श्रीः ।

विविध-संग्रह ।

अर्थात्

हिन्दी और मरुभाषा की लाभदायक कविताओं का संग्रह ।

जो

मलसीसर ठाकुर भूरसिंहजी शेखावत ने सङ्कलित करके सज्जन महाशयों के अवलोकनार्थ प्रकाशित कराया ।

अजमेर

राजस्थान-यन्त्रालय ।

द्वितीय आवृत्ति ५०० | सन् १९०६ ई० | न्योछावर आठ आने

श्रीमान् कच्छकुलावतंस राजराजेन्द्र श्री १०८ श्री आमेर के महाराजाधिराजों की वंशावली ॥

छप्पय ।

सोढ[१]*, दूलह[२], काकिल[३], हणूत[४], जान्हड़[५], पजूनसी[६] ।
मलैंसी[७], बींझल[८], राज[९], कील्ह[१०], कूँतल[११], रु जूनसी[१२] ॥
उदय[१३], नृसिंह[१४], वर्णवीर[१५], उद्धरण[१६], चन्द्रसेण[१७], भव ।
पीथल[१८], भार[१९], भँगूत[२०], मान[२१], जगतेस[२२] रु माहव[२३] ॥

---

* इस छप्पय में लिखे हुए २२, २३ और २६ संख्या के नाम केवल पीढियों में गिने जाते हैं किन्तु संख्या २२ व २६ तो कुंवर पद में ही स्वर्ग सिधारे और २३ वें भँवर पद में ही वैकुण्ठवासी हुए इसलिये इन्होंने राज्य नहीं किया ।

उक्त महाराजाओं से अन्य भी राजा हुए हैं, जैसे १८ वें पृथ्वीराज जी से पीछे १ पूर्णमलजी, २ भीमजी, ३ रत्नसीजी, ४ आमकरणजी । और २१ वें मानसिंहजी से पीछे भावसिंहजी । तथा २८ वें महाराज सवाई जयसिंहजी से

जयसिंह[२४], राम[२५], किसनो[२६], बिसन[२७],
जैसो[२८], माधं[२९], पांतिस[३०], जपत ।
जगतेस[३१], जेस[३२], रामेस[३३] जिण,
पाट भूप माधव[३४] तपत ॥

बारहठ बालाबक्सजी ।

पीछे ईश्वरीसिंहजी । एवं २९ वें माधवसिंहजी से पीछे पृथ्वीसिंहजी । इन्होंने राज्य तो किया है परन्तु वंशपरिपाटी के अनुसार पीढ़ियों में इनकी गणना नहीं होती । जैसे महाराज सवाई जयसिंहजी के ईश्वरीसिंहजी और माधवसिंहजी ये दो पुत्र हुए इन में केवल महाराज माधवसिंहजी ही पीढ़ियों में गिने जाते हैं और ईश्वरीसिंहजी नहीं ॥

भूमिका।

सब सज्जन महाशयों से विनयपूर्वक निवेदन है कि यह एक छोटा सा संग्रह भाषा काव्य के ग्रन्थों से वा कई महाशयों से समय २ पर सुनकर किया गया है कि जिस में मेरी समझ से लाभदायक और उपयोगी वचन लिये गये हैं और विशेष हेतु यह समझा गया है कि समय के अनुसार भाषा आदि प्राचीन काव्य का प्रचार बहुत न्यून सा होगया है और यह एक स्वाभाविक बात है कि प्राचीन वस्तु को स्वरूपान्तर में उपस्थित करते हैं तो वह अवश्यमेव दृष्टि में रोचक होती है इस लिये मेरा यह प्रयोजन है कि इस नवीन संग्रह के हेतु इस प्राचीन काव्य पर सज्जन महाशयों की पुनरावृत्ति होगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

इस संग्रह को पूर्ण करने और रुचिर बनाने में हणूत्या ग्राम निवासी सुयोग्य और विद्वान् बाळाबख्शजी बारहठ का परिश्रम बहुत ही उपकारी है। इन बाळाबख्शजी से हमारे घराने का प्राचीन सम्बन्ध है।

पाठकों की सुगमता के लिये हम ने इस के प्रकरण विभाग करादिये हैं परन्तु यथार्थ विभाग होना हमारी शक्ति से बहार था इस लिये क्षमा चाहता हूं।

मैं उन सज्जन महाशयों का नाम देकर धन्यवाद देने में कठिनता समझता हूं कि जिन जिन से इस संग्रह के काव्य प्राप्त

हुए हैं। क्योंकि यह बात बहुत काल की है इस से स्मरण रहना कठिन है इस लिये उन सब सज्जनों को एक साथ ही अन्तः से धन्यवाद करता हूं।

मैं ने जो ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखा है सो पुस्तकों से लेकर वा सुनकर लिखा है। यदि कोई भूल चूक हुई हो तो क्षमा चाहता और निवेदन करता हूं कि कोई सज्जन महाशय इस संग्रह की भूल को सुधारेंगे तो बड़ी कृपा होगी।

सब सज्जनों का कृपाभिलाषी

भूरसिंह शेखावत

मलसीसर राज्य जयपुर।

सूची।

विषय पृष्ठाङ्क ।

विषय पृष्ठाङ्क ।

—०—

श्रीः ।

विविधसंग्रह ।

मङ्गलाचरण ।

दोहा ।

गजमुख सनमुख होत ही, विघन विमुख ह्वै जात ।
जिम पग परत प्रयाग मग, पाप-पहार विलात ॥१॥

महाकवि केशवदासजी "कविप्रिया" ।

सोरठा ।

वड़कै डाढ बराह, कड़कै पीठ कमठ्ठरी ।
धड़कै नाग धराह, बाघ चढै जद बीस हथ ॥ २ ॥
करनल ! किनियाणीह, धिणयाणी जंगळ-धरा ।
आळस मत आणीह, बीसहथी लाजै विरद[2] ॥ ३ ॥

---

(१) ये पांच सोरठे श्रीकरनीजी की स्तुति में हैं, जिन का मन्दिर बीकानेर के पास "देसणोक" में है ।

(२) "विड़द" पाठ भी है ।

आई विषमी वार, जे ऊपर करस्यो नहीं ।
सरणाई साधार, कुण जग कहसी करनला ? ॥ ४ ॥

सुणियाँ साद सतेज, आई आगळ आवता ।
जगदंब अब क्यौं जेज, करी इती तैं करनला ? ॥ ५ ॥

देवी देसाणेह, धर वीकाणैं तू धणी ।
जोगण जोधाणेह, मानीजे मेहासदू ॥ ६ ॥

सज्जन ।

दोहा ।

विपत धीर, सम्पत छमा, सभा माँझ शुभ बैन ।
युध विक्रम, जस रति कथा, वै नरवर गुण ऐन ॥ १ ॥

अमृत भरे तन, मन, वचन, निस दिन पर उपकार ।
परगुण मानत मेरु सम, विरले सन्त सँसार ॥ २ ॥

अप्रिय वचन दरिद्रता, प्रीति वचन धन पूर ।
निजतिय रति, निन्दा रहित, वै महिमण्डन सूर ॥ ३ ॥

शशि कुमुदनि प्रफुलित करत, कमल विकासत भान ।
बिनु मांगें जल देत घन, त्यौं ही सन्त सुजान ॥ ४ ॥

जड़ताई मति की हरत, पाप निवारत अंग ।
कीरति, सत्य, प्रसन्नता, देत सदा सतसंग ॥ ५ ॥

अहि-मुख पर्‍यौ सु विष भयो, कदली भयो कपूर।
सीप पर्‍यौ मोती भयो, संगत के फल सूर ॥ ६ ॥

"भर्तृहरिशतक" ।

कुल सुपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात ।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥ ७ ॥

शील, कर्म, कुल, श्रुत, चतुर, पुरुष-परिच्छा जान।
ताड़न, छेदन पुन कसन, इन तैं कनक पिछान ॥८॥

बड़े वचन पलटैं नहीं, कहि निरबाहैं धीर ।
कियौ विभीषन लङ्कपति, पाय विजय रघुवीर॥ ९ ॥

कष्ट परेंहू साधुजन, नैक न होत मलान ।
ज्यौं ज्यौं कञ्चन ताइयै, त्यौं त्यौं निर्मल जान॥१०॥

सुजन कुसङ्गत सङ्गतैं, सज्जनता न तजन्त ।
ज्यौं भुजङ्ग-गन सङ्ग तउ, चन्दन विष न धरन्त ॥११॥

वृन्दकविकृत "वृन्दविनोदसतसई" ।

सोरठा ।

आछोड़ाँ ढिग आय, आछोड़ा भेळा हुवै ।
ज्यौं सागर मैं जाय, रळै नदी-जळ राजिया! ॥१२॥

तज सारी मन-घात, इकतारी राखै अधिक ।
वाँ मिनखाँरी बात, राम निभावै राजिया ! ॥१३॥

पर कर मेरु प्रमाण, आप रहै रज-कण इसा ।
वै मानव धन जाण, रविमण्डल बिच राजिया! ॥१४॥

मळयागिरँद मँझार, हरकोइ तरु चन्दण हुवै ।
सङ्गत लेह सुधार, रूँखाँ ही नै राजिया ! ॥ १५ ॥

दोहा ।

काछ दृढा, कर बरसणा, मन चङ्गा, मुख मिट्ठ ।
रण सूरा, जग बल्लभा, सो मैं बिरळा दिट्ठ ॥ १६ ॥

बड़न की सम्पति सबैं, लघु बिलसन्त अनन्त ।
दधि[1]-जल घनै[2],घन-जल धरा[3],धर-जल जग विलसन्त।

तरवर, सरवर, सन्त जन, चौथो बरसै मेह ।
परमारथ के कारणै, चारों धारैं देह ॥ १८ ॥

'मुक्तक, ।

सवैया ।

निसि वासर वस्तु विचार सदा,
मुख साँच, हिये करुणा धन है ।

---

(१) समुद्र । (२) मेघ । (३) पृथ्वी ।

अगनी गृह, संग्रह धर्म कथान,
परिग्रह साधुन को गन है।
कहँ "केशव" भीतर ज्योति जगै,
अरु बाहर भोगन को तन है।
मन हाथ सदा जिनके तिनके,
वन ही घर है घर ही वन है ॥ १९ ॥

महाकवि "केशवदासजी"।

कवित्त।

पेट को निपट शुद्ध, आँखन लजीलो वीर,
उर को गँभीर होय, मीठो महा मुख को।
बाह को पगार पुनि पाय को अडिग होय,
बोलन को साँचो, 'देवीदास' सूधी रुख को।
मन को उदार, ढीलो हाथ को, अकेलो टेक,
काछही को काठो है, सहैया सुख दुख को।
पचिकै पितामह ने ऐसो जो सँवार्‌यो तब,
यातैं कछु और हू सिँगार है पुरुख (ष) को॥२०॥

'देवीदास'।

सवैया।

वंश तैं नाहिं महानता है न,
महानता लाखन ग्रन्थ पढे तैं।
ऊमर तैं न महानता है न,
महानता कोटिक द्रव्य बढे तैं।
दान तैं नाहिं महानता है न,
महानता शूरता जुद्ध चढे तैं।
जो मग धर्म-धनञ्जय कौ सु,
महानता ता मग बीच कढे तैं॥ २१॥

कवित्त।

"गाण्डीव" धनुष तहाँ, अच्छय निषंग दोय,
वह्निदत्त वाह हय मारुत के मीत हैं।
सारथी हैं कृष्ण, "भीम", "सात्विकी", "सिखण्डी"
औरँ, "धृष्टद्युम्न" आदि वीर जगतैं अजीत है।
देव, द्विज, दीन, वृद्ध, सेवा नृप सावधान,
वेद, कुल, लोक की मजाद बीच प्रीत है।
रवि के उदय की ज्यों निश्चय प्रतीति तैसे,
युधिष्ठिर विजै हू की विजय प्रतीत है॥ २२॥

दोहा।

धृतराष्ट्रहिं आदेश, धर्म-पुत्र सिर पर धर्‍यो।
यथा सुयोधन लेश, कबहु न अङ्गीकृत कर्‍यो ॥२३॥

महात्मा श्रीस्वरूपदासजी "पाण्डवयशेन्दुचन्द्रिका,,।

दृढ़ प्रतिज्ञा।

सवैया।

मात कौ मोह न द्रोह कुमात को,
ना कछु तात के गात दहे को।
प्रान को छोह न, बन्धु बिछोह न,
राज को मोह न औधि गये को।
नैकन "केशव" आवत जीव मैं,
ना कछु सीत वियोग सहे को।
ता रन-भूमि मैं राम कह्यौ,
मोहि सोच विभीषण भूप कहे को॥ १॥

महाकवि "केशवदासजी,,।

दुर्जन ।

—०—

दोहा ।

दुष्ट करम निस दिन करत, कुल-म्रजाद तैं हीन।
सम्पत पावत नीच नर, होत बिषै-सुख लीन ॥१॥
दया-हीन, बिनु काज रिपु, तस्करता परिपुष्ट ।
सहि न सकै सुन बन्धु को, यह स्वभाव सो दुष्ट॥२॥
जो नृप पै अधिकार लै,करै न पर उपकार ।
पुनि ताके अधिकार मैं, रहै न आदि अकार॥३॥
गिरिये गिरिवर शिखर तैं, पड़िये धरणि मँझार।
दुष्ट-संग नहि कीजिये, बूडैं कालीधार ॥ ४ ॥
दुर्जन रूँख बँबूल को, सज्जन ! द्वार न बोय ।
जो अंमृत ले सींचिये, तोहु कँटीलो होय ॥ ५ ॥

सोरठा ।

मन्त्री मूढ मलीन, चाकर चोर, सचिन्त चित।
हलकारा सुधहीन, पैलाँ घर वाँछे पिशण ॥ ६ ॥
दिल साजनां दुमेल, नीच संग ओछी नजर ।
अति सबळां ऊखेळ, पैलाँ घर वाँछे पिशण ॥७॥

"कविराजा बांकीदास जी."

कीधोड़ो उपकार, नर कृतघण जाणै नहीं ।
लाणतियां ज्यां लार, रजी उडावै राजिया ! ॥ ८ ॥
मिळियाँ अति मनवार, बीछड़ियाँ भाखैं बुरी ।
लानतदे जाँ लार, रजी उडावो राजिया ! ॥ ९ ॥
मुख ऊपर मीठास, घट भीतर खोटा घड़ै ।
अहड़ाँ सूँ इकलास, राखीजे नह राजिया ! ॥ १० ॥

"राजिया," ।

मूर्ख ।

निपट अबुध समझैं कहा[1], बुध-जन-वचन-विलास ।
कब हू भेक[2] न जानही, अमल कमल की वास ॥ १ ॥

"वृन्दसतसई," ।

नह समझै मानै नहीं, जिणरो कोइ न जोर ।
अकल विनाँरा आदमी, ढवै किसी विध ढोर ॥ २ ॥

"मुक्तक," ।

---

(१) "नहीं," पाठ भी है । २ मेंढक ।

नीति ।

दोहा ।

शस्त्र रु शास्त्र विनोद तैं, काटत समय सुजान ।
व्यसन सात, निद्रा, कलह, इन तैं नर अज्ञान ॥१॥

"हितोपदेश" ।

आलस, गृह-रति, दुरव्यसन, भाग भरोसो, रोग ।
"पद्माकर" करतूत के, इते विनाशक योग ॥ २ ॥

"पद्माकर" ।

सुख करि मूढ रिझाइये, अतिसुख पण्डित लोग ।
अर्द्ध-दग्ध[1] जड़ जीव कों, विधिहु न रिझवन जोग ॥३॥

सोरठा ।

तवै बूँद है खीन, कमल-पत्र जैसी रहै ।
मुकुता[2] सीँपह कीन, थान मान, अपमान है ॥४॥

दान, भोग अरु नाश, तीन भाँति धन जात है ।
करत दोय को त्रास, बास नास को तीसरो ॥५॥

---

(१) यहां "अर्द्धदग्ध" की जगह "दुर्विदग्ध" होता तो शुद्ध रहता । (२) मोती ।

पाप निवारत, हित करत, गुन गिन, ओगन ढाँक।
दुख मैं राखत, देत कछु, सत मित्रन ये आँक ॥६॥
जे अतिक्रोधी भूप ते, काहू सौं न कृपाल ।
होम करतहू द्विजन कों, दहत अगनि की ज्वाल ॥७॥

"भर्तृहरिशतक" ।

कारज आछो औ बुरो, कीजे बहुत विचार ।
कियें जलद नाहीं धनै, रहत हिये मैं हार ॥ ८ ॥
वन, रण, जल अरु अगनि मैं, गिरि, समुद्र के मध्य ।
निद्रा बिच अरु कठिन थल, पूर्व पुण्य तैं सिद्ध॥९॥
को अति-भार समर्थ कों, उद्यम तैं को दूर ।
को विदेश बुध जनन कों, को प्रियवचन करूर ॥१०॥
भक्ष्य, अभक्ष्य न भेद जहँ, काज, अकाज समान।
वाच्य, अवाच्य लखै न जो, तातैं डरहु सुजान ॥११॥
परनारी सब मातु सम, परधन धूलि समान ।
सबै जीव निज जीव सम, देखै सो दृगवान॥१२॥
कारज हनै परोक्ष मैं, मुख मीठो बतराय ।
विष-घट मुख है दूध ज्यों, ऐसो मित्र विहाय ॥१३॥
इक तरु सूखे की अगनि, जारत सब वनराय ।
त्यों ही पूत कुपूत तैं, वंश समूल नसाय ॥ १४ ॥

परमुख[1] सेवक परखिये, बान्धव दुख की बार ।
मित्र सु आपत काल मैं, विभवहानि मैं नार ॥१५॥
गत वस्तु हिँ सोचैं नहीं, गुनै न होनीहार ।
कार करहिँ परवीन जन, आय परैं अनुसार ॥१६॥

बारहठ उमेदरामजी "चाणक्यानुवाद," ।

गुन नहिँ तऊ मगाइये, जो जीवन-सुख-भौन ।
आग जरावत नगर तउ, आग न आनत कौन? ॥१७॥
ओछे नर की प्रीति की, दीन्ही रीति बताय ।
जैसे छीलर ताल-जल, घटत घटत घटि जाय ॥१८॥
आप बुरे जग है बुरो, भलो भले जग जान ।
तजत बहेरा छाँह सब, गहत आम की आन ॥१९॥
बुरे लगैं सिख के वचन, हिये बिचारो आप ।
करुवे भेषज विनु पिएँ, मिटै न तन को ताप ॥२०॥
बात कहन की रीति मैं, है अन्तर अधिकाय ।
एक वचन तैं रिस बढ़ै, एक वचन तैं जाय ॥२१॥
मूरख कों हित के वचन, सुनि उपजत है कोप ।
साप हिँ दूध पिवाइये, वाके है विष ओप ॥ २२ ॥

---

(१) परोक्ष ।

मधुर वचन तैं जात मिट, उत्तम-जन-अभिमान ।
तनक सीत जल तैं मिटै, जैसे दूध-उफान ॥२३॥
जो समझै जा बात कौं सो तिँह करै बिचार ।

(क) ॥ १६ ॥

[पृष्ठ १२ की संख्या १६ के पीछे इसको पढ़ना चाहिये ।]

छप्पय ।

बात बात मैं तरक करैं निजमुख प्रभुताई ।
जन जन तैं मित्रता जुगल बाँधैं समुदाई ॥
सब कामन तैं अरुचि दाय आनैं न महा पटु ।
आलसी विपुल असाधु कहैं दुरवाद बैन कटु ॥
यौं राजनीति चाणक्य कहैं जगप्रसिद्ध शिक्षा परम
राखबे योग नाहीं नृपत ! ऐसे षट् सेवक अधम॥१६॥

चाणक्य ।

बहुतन कौं न विरोधिये, निबल जान बलवान ।
मिल भख जायँ पिपीलिका[1], नागे[2] हिँ नग[3] के मान[4]॥२९॥

बहुत निबल मिल बल करैं, करैं जु चाहैं सोय ।
तिनकन की रसरा करी, करी निबन्धन होय ॥३०॥

---

(१) चैंटियां । (२) हाथी । (३) पर्वत । (४) हाथी ।

परमुख सेवक परखिये, बान्धव दुख की बार।
मित्र सु आपत काल मैं, विभवहानि मैं नार ॥१५॥
गत वस्तु हिँ सोचैं नहीं, गुनै न होनीहार।

बात कहन की रीति मैं, है अन्तर अधिकाय।
एक वचन तैं रिस बढ़ै, एक वचन तैं जाय ॥२१॥
मूरख कों हित के वचन, सुनि उपजत है कोप।
साप हिँ दूध पिवाइये, वाके है विष ओप ॥ २२ ॥

---

(१) परोक्ष।

मधुर वचन तैं जात मिट, उत्तम-जन-अभिमान ।
तनक सीत जल तैं मिटै, जैसे दूध-उफान ॥२३॥

जो समझै जा बात कौं, सो तिँह कहै बिचार ।
रोग न जानै ज्योतिषी, वैद्य ग्रहन को चार ॥२४॥

ऊँचे बैठें ना लहै, गुन बिनु बडपन कोय ।
बैठ्यौ देवल-शिखर पर, वायस गरुड़ न होय ॥२५॥

प्रकृत मिलत मन मिलत है, अनमिल तैं न मिलाय ।
दूध दही तैं जमत है, काँजी तैं फटि जाय ॥२६॥

सुधरी बिगरै बेगि ही, बिगरी फिर सुधरै न ।
दूध फटै काँजी परैं, सो फिर दूध बनै न ॥२७॥

सुख बीतें दुख होत है, दुख बीतें सुख होत ।
दिवस गयें ज्यौं निस उदित, निस गत दिवस उदोत ॥

वहुतन कों न विरोधिये, निबल जान बलवान ।
मिल भख जायँ पिपीलिकाँ[1], नागे[2] हिँ नगँ[3] क मान ॥२९॥

वहुत निबल मिल बल करैं, करैं जु चाहैं सोय ।
तिनकन की रसरा करी, करी[4] निबन्धन होय ॥३०॥

---

(१) चैंटियां । (२) हाथी । (३) पर्वत । (४) हाथी ।

कहा रस मैं कहा रोस मैं, अरि तैं जिन पतियाय।
जैसैं सीतल तपत जल, डारत आग बुझाय ॥३१॥

छोटे अरि को साधिये, छोटो कर उपचार।
मरै न मूँसा सिंह तैं, मारै ताहि मँजार ॥ ३२ ॥

नृप अनीति के दोष तैं, चूकैं मन्त्र प्रयोग।
करै कुपथ ला पुरुष कौं, उपजै क्यों नहिं रोग ॥३३॥

जूवा खेलत होत है, सुख सम्पत को नास।
राज काज नल तैं छुट्यौ, बसे पण्डु वन-वास ॥३४॥

जो पहले कीजे जतन, सो पीछे फलदाय।
लाय लगें खोदैं कुआ, कैसे आग बुझाय? ॥३५॥

क्यूँ कीजे ऐसो जतन, जा तैं काज न होय।
परवत पर खोदैं कुआ, कैसे निकसै तोय? ॥३६॥

सेवक सो ही जानिये, देत विपत में सङ्ग।
तन-छाया ज्यौं धूप में, रहै साथ इकरंग ॥ ३७॥

सब तैं लघु है माँगिबो, यामैं फेर न सार।
बलि पै जाचत ही भये, बावन-तन करतार ॥३८॥

---

(१) "फल" की जगह "सुख" पाठ होता तो ठीक रहता।

दान दीन कों दीजिये, मिटै दरद की पीर।
औषध ता कौं दीजिये, जाके रोग शरीर ॥३९॥

धरम घटायां धन घटै, धन घटि, मन घट जाय।
मन घटियां महिमा घटै, घटत घटत घट जाय॥४०॥

"वृन्दसतसई"

तुलसी! भूपति भानु सो, प्रजा-भाग्य तैं होय।
हरषत, वरषत सब लखैं, करषंत[2] लखै न कोय ॥४१॥

तुलसी! हेत कुहेत मैं, पांडो[3] ही लख जाय।
लोयण देखै मात का, फरड़ा फांसा खाय ॥ ४२ ॥

आवत ही हरखत नहीं, नैनन नाहिं सनेह।
तुलसी तहां न जाइये, कञ्चन बरसो मेह ॥ ४३ ॥

तुलसी कहै पुकारिकै, सुनो सकल दे कान।
हेम-दान, गज-दान तैं, बड़ो दान सनमान ॥४४॥

तुलसी! मीठे बचन तैं, सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण यह मन्त्र है, तजिये वचन कठोर ॥ ४५ ॥

कवि-कुल-चूड़ा-मणि महात्मा श्रीतुलसीदासजी।

---

(१) सूर्य। (२) (कर्षंत) खैंचते समय। (३) लघु छुलाय लखि जाय। पाठान्तर।

दादू आदर भाव का, मीठा लागै मोठ ।
बिन आदर व्यञ्जन बुरा, जीमणवाला ठोठ ॥४५॥

महात्मा "श्रीदादूजी,, ।

सोरठा ।

समुझणहार सुजाण, नर मोसर चूकै नहीं ।
अवसररो अहसाण, रहै घणा दिन राजिया! ॥४६॥

---

(१) सीकर के रावराजा देवीसिंहजी के पास खिड़िया चारण "कृपाराम,, नामक उत्तम विद्वान् रहते थे और इन के एक "राजिया,, नाम का भृत्य था जिस को उक्त कविवर प्रायः दोहे आदि कहा करते थे अस्तु । उक्त रावराजाजी का स्वर्ग-वास हुए पीछे किसी कारण से जयपुर की फौज सीकर पर चढ़ी । उस समय रावराजा लक्ष्मणसिंजी तो बालक थे और इन की माता "कान्हलोत,, जी सब राज-कार्य करती थीं । उन्होंने रावराजाजी के बन्धुओं को बुलाकर सलाह की तो सब ने युद्ध करना ठान लिया परन्तु यहां "कान्हलोत,, जी की विचारशीलता प्रशंसनीय है । उन्होंने जयपुर की सेना से लड़ना उचित नहीं समझा और बारहठ "कृपाराम,, जी को सन्धि करने को भेजा । चतुर बारहठजी जयपुर के सेनाध्यक्ष हलदिया से मिले और उस को यह दोहा कहा । जिस का ऐसा प्रभाव पड़ा कि सन्धि होगई और सीकर को कुछ क्षति नहीं पहुंची ।

साँचो मित्र सचेत, कहो काम न करै किसो ।
हरि अरजुन रै हेत, रथ कर हाँक्यो राजिया! ॥४७॥

सुख मैं प्रीति सवाय, दुख मैं मुख टाला दिवै ।
जे के कहसी जाय?, राम-कचहड़ी राजिया ! ॥४८॥

हूनर करो हज़ार, स्याणप चतुराई सहित ।
हेत कपट विवहार, रहै न छानो राजिया ! ॥४९॥

पल माहीं कर प्यार, पल माहीं पलटै परा ।
वै मुतलबरा यार, रहजे अळगो राजिया ! ॥५०॥

मिणधर विष अणमाव, मोटानह धारै मग़ज़ ।
बीछू पूँछ बणाव, राखै सिर पर राजिया ! ॥५१॥

अवनी रोग अनेक, जांरा विध कीधा जतन ।
इण प्रकृतीरी एक, रची न औषध राजिया ! ॥५२॥

वचन नृपत अविवेक, सुण छीजे स्याणा मिनख ।
अपत हुवां तरु एक, रहै न पंछी राजिया ! ॥५३॥

उपजावै अनुराग, कोयल मन हरषित करै ।
कड़वो लागै काग, रसणारा गुण राजिया ! ॥५४॥

रोग, अगनि अरु राड़, जाण अलप कीजे जतन ।
बधियाँ पछै बिगाड़, रोक्यो रहै न राजिया ! ॥५५॥

जण जण रो सुख जोय, नासत दुख कहणो नहीं।
काढ न दे वित कोय, रीरायांसूँ राजिया ! ॥५६॥

डूँगर जळती लाय, दीखै सारी जगत नै।
प्राजळती निज-पाय, रती न सूझै राजिया ! ॥५७॥

कही न मानै काय, जुगती अणजुगती जठै।
स्याणाँ नैं सुख पाय, रहणौं चुपको राजिया ! ॥५८॥

कारण कटक न कीध, सुखरा चाहीजे सुपह।
लङ्क विकट गढ लीध, रीछ बांदराँ राजिया ! ॥५९॥

गुण, अवगुण जिण गाँयँ, सुणे न कोई साँभलै।
मच्छ गळागळ माँय, रहणो मुशकिल राजिया ! ॥६०॥

सुधहीणो सरदार, मतिहीणा राखै मिनख।
अस आँधो असवार, राम रुखाळो राजिया ! ॥६१॥

"राजिया"

शुक, पिक लगै सवाद, भल थोड़ो ही भाखणों।
वृथा करै बकवाद, भेक लवै ज्यों भैरिया ! ॥६२॥

चालै कुळ की चाल, राम धरम राख्याँ रहै।
दुखियाँ पर सुदयाल, भव क्यों बिगड़ै भैरिया ! ॥६३॥

रहणा इक रंगाह, कहणाँ नहिं कूड़ा कथन।

चित उज्जल चंगाह, भलाज कोइक भैरिया! ॥६४॥

"भैरिया"।

दोहा।

लोनहरामी कृतघनी, स्वामिद्रोहि गुनचोर।
आपै ही उड़ि जायगो, ज्यौं पावक मैं सोर ॥६५॥

"कुक्कक"।

अपने अरि की मित्र की, एको गति पहिचान।
धीरज तैं सब होत है, तुरमति तैं बड़ हान॥६६॥

चन्दकवि "पृथ्वीराज-रासा"।

नर जिण सर गालिब नहीं, दुसमण रा सो दाव।
बिन पढियाँ ही "बाँकला", बैपाढियाँरा राव ॥६७॥

जब्बर बिरोधी अगन, जळ, ले निज काज लुहार।
जेम विरोधी मन्त्रियाँ, सुपह काज ले सार॥६८॥

कतरण, सीवण, केवटण, ले चित दरजी दौर।
रजधानी तम्बू रचै, वह नर नायक और ॥६९॥

ज्यौं भ्रत अपने आन की, रखे परस्पर टेक।
त्यौं सितार के मेळ ज्यौं, प्रभु हित मैं है एक॥७०॥

गुसांईजी "गणेशपुरीजी"।

तात, मात, सुत, भ्रात, त्रिय, सब ही मिलि हैं सैल।
सत्य मित्र संसार में, मिलन महा मुशकैल ॥७१॥

"सूयल" आयाँ सजनाँ, परत न दीजै पूठ ।
माढ़ू मनमेळू न ही, आदर कीजै ऊठ ॥७२॥

"सूयल" सूप भरेह, अपणों ऊपणिये नहीं ।
मिलिये जाड करेह, ढाबाहै तोहि ढांकिये ॥७३॥

धन देकै तन राखिये, तन दे रखिये लाज ।
धन, तन दोनूँ दीजिये, एक प्रीति के काज ॥७४॥

धन, जोबन अरु ठाकुरी, ता ऊपर अविवेक ।
यह चारूँ भेळा हुआँ, अनरथ करै अनेक ॥७५॥

समय न चूकै चतुर नर, कहत कवी जन कूक ।
चतुरन के खटकत हिये, समयचूक की हूक॥७६॥

हंसा तहाँ न जाइये,
जहं आदर नहिं भाय ।
बग कग, कग बग, बगग कग,
कग बग, कगग कहाय ॥ ७७ ॥

सब सों मीठो बोलिबो, करवो पर-उपकार ।
"नारायण" या जगत में, यह दो बातैं सार ॥७८॥

सम्पत सौं आपत भली!, जै दिन थोड़ा होय ।
मीत, महेली, बाँधवाँ, ठीक पड़ै सब कोय ॥७९॥

धूम जाताँ, घर पलटताँ, त्रिया पडन्ताँ ताव ।
ये तीनों दिन मरण के, कहा रङ्क कहा राव ॥८०॥

मन को दुख मन मैं रखो, न करो वदन विलाप।
दुर्जन हरषै देखिकै, सुजन धरै सन्ताप ॥ ८१ ॥

जेते जग में मनुज हैं, राखो सब सों हेत ।
को जानै केहि काल मैं, विधि का को संग देत ॥८२॥

जामै गुण अवलोकिये, करिये तिहिँ मंजूर ।
बाल-वचन हू मानिये, होय नीति-भरपूर ॥ ८३ ॥

"मुक्तक"

देह विषैं बल, गेह धन, जस इत पुन परलोक ।
चारि बचाय इँद्रीन के, कीजे भोग अशोक ॥८४॥

महात्मा "स्वरूपदासजी,,

पर-त्रिय-रत पर-द्रव्य-हर, तिन हिँ प्रजागर होय ।
आप अबल रिपु प्रबल तैं, करै वैर पुनि सोय ॥८५॥

जा दिन विद्या, धरम को, जस को लाभ न होय ।
विदुर कहै धृतराष्ट्र तैं, वन्ध्य काल है सोय ॥ ८६ ॥

उतपति विद्या, न्याय, धन, करहु अमर तन मानि ।
खरचहु आतुर होय मनु, काल गहे कच आनि ॥८७॥

तीनहु[1] राखै दृष्टि मैं, तीन[2] न विगरन देत ।
तीन[3] पिछानै विमल-मति, सब कों बश करिलेत॥८८॥

सत्य, शील, शम, दम, दया, ज्ञान, सुकुलता, दान ।
जगवल्लभता, शूरता, पावत दस पुन्यवान ॥ ८६ ॥

क्षमा मानुषी विपत में, दैवापति सन्तोष ।
औगुन तिन में एक नृप !, गिनत अशक्त सदोष॥९०॥

कारागृह[4] दे पुत्र कों, धर्मपुत्र कों राज ।
टरै प्रजागर आप को, कुल को ह्वै न अकाज ॥९१॥

त्याग एक हित ग्राम के, ग्राम त्याग हित देश ।
देश त्याग हित प्रान के, वाणी "विदुर" विशेष॥९२॥

अतिशीतल तन इन्दु को, होत ग्रहण बहु बेर ।
उग्र तेज रवि कोउ समय, होत न तदपि अंधेर ॥९३॥

इक तैं दोय विचारकरि, जीति च्यार तैं तीन ।
पांच रोकि षट् जानकरि, सात तजैं सुखलीन ॥९४॥

---

(१) आय (लाभ) १ व्यय (खर्च) २ कोष (खजाना) ३ । (२) वेदरीति १ लोकरीति २ कुलरीति ३ । (३) शत्रु १ मित्र २ उदासीन ३ । (४) यह दोहा महाराज धृतराष्ट्र के प्रति "विदुर," की उक्ति है । इस में हमारा अभिप्राय यह है कि पूर्वकाल में विदुर जैसे स्पष्टवक्ता राजाओं के पास रहते थे ।

कवित्त ।

एक बुद्धि वृत्ति ही तैं कारज अकारज कों,
नीके कै विचारि शत्रु, मित्र, उदासीन कों ।
कोप्यौं साम, लोभ्यौं दाम, भीतैं भेद, हीनै दण्ड,
चारि तैं या रीति जीतै पूर्व कहे तीन को ।
पाँच इन्द्री वेग रोकि, सन्धि विग्रहादि षट,
जानि, सप्त विस्न तजै और संग हीन को ।
द्यूत, सुरा, मृगया, स्त्री, तन्द्रा, छल, क्रूरताई,
दोनूँ लोक भ्रष्ट जानि सात के अधीन को ॥६५॥

सो न सभा जामैं कोऊ वृद्ध को प्रवेश नांहि,
सो न वृद्ध होय समै पाय नीति बोलै ना ।
सो न नीति जामैं कुल, लोक, वेद की न रीति,
सो न रीति जामैं साँच झूँठ नीकैं तोलै ना ।
सो न तोलिबो है जामैं पक्षपात बोलै छल,
स्वारथ विचारि जैसी होय तैसी खोलै ना ।
सो ही भूमिपाल एते दोष विनु वानी सुनि,
ता को अङ्गीकार करै इतै उतै डोलै ना ॥ ९६ ॥

"विदुर-प्रजागरप्रकरण" ।

---

(१) व्यसन ।

आन थान हाटक को कोमल स्वभाव सदा,
अग्नि नीर फेट तहाँ कठिन महान है ।
आन धातु आन थान कठिन महान हैं पै,
नीर सोर यन्त्र तहाँ सब ही की हान है ।
सांचवान धर्मवान पाण्डुपुत्र कोमल है,
युद्ध के प्रयान इन्द्र रुद्र के प्रमान हैं ।
आन धातु के समान जान तेरे बन्धु त्यों ही,
प्रान हानि व्है है मानि बचन निदान है ॥ १७ ॥

सुनो मित्र "दारुक!" "जयद्रथ" के बचावे काज,
द्रोन से असाध मिलि व्यूह की विचारी है ।
प्रात नहीं छोड़ूँ इन्द्र आदिक सहाय जो पै,
अर्जुन को शत्रु सो हमारो शत्रु भारी है ।
"अर्जुन" है मेरो प्रान, मैं हूँ प्रान अर्जुन को,
अर्जुन की जीवन सो जीवन हमारी है ।
अर्जुन विना न छिन देखिसकौं विश्व हू कों,
कहै गिरिधारी मैं सदैव ऐसी धारी है ॥ १८ ॥

प्राकृत धनुष मेरो, गाण्डीव धनु अनाश,
मेरे वान खीन, वाके अक्षय निषंग है ।

वाकै कृष्ण सारथी सदैव अनुकूल मति,
मेरै प्रतिकूल तो सो सार्थी कुसंग है ।
मो कों शाप दोय गुरु ऋषि के महान हान,
वा कों वरदान रुद्र इन्द्र को अभंग है ।
अश्व, रथ वैसे ना, बरोबरी करौं हौं युद्ध,
एसैं क्यौं न बोलै तो कों कोटि २ रंग है ॥९९॥
भीम कों दियोहो विष ता दिन बुयो हो बीज,
लाखा-गृह भयें ताको अङ्कुर लखायो है ।
द्यूत-क्रीडा काल सो विस्तार पाय बडो भयो,
द्रौपदी-हरन भयें मञ्जरी तैं छायो है ।
मच्छ गाय घेरी जबै पुष्प फल भार भऱ्यो,
तै नैं ही कुमन्त्र जल सींचि के बढायो है ।
विदुर के वचन कुठार तैं न कट्यो वृक्ष,
वा को फल पाको भूप ! तेरी भेट आयो है ॥१००॥

छन्द नाराच ।

व्यतीत रात्रि तीन जाम भूप मंजनं करै ।
पिताम्बरं सुधारि फेरि देव-सेव विस्तरै ॥
जुहोत्र अग्नि-होत्र कों रु गाय, विप्र पूजिकै ।
बुलायकै अमात्य वृन्द, लाभ खर्च बूझिकै ॥१०१॥

पिता रु मात कों प्रणाम धारिकै सभा करै ।
प्रताप देखि शत्रु आप ताप तैं जरै डरै ॥
स्वदेश के विदेश के कर्त्ता अमात्य आयकै ।
यथास्थितं सुमान दान जे चलंत पायकै ॥१०२॥

निहारि अश्वशाल कों रसोइ थान आवना ।
सहस्र अष्ट औ असी ऋषीन कों जिमावना ॥
सबन्धु फेरि जीमि भूप, भूप-वृन्द संजुतं ।
करै विचार शास्त्र को अरोग्य पान अमृतं ॥१०३॥

तृतीय जाम पायकै लखन्त सैन्य हाजरी ।
करन्त शस्त्र अस्त्र एक एक तैं बराबरी ॥
प्रदोष सन्धि साधिकै करन्त रात्रि कों सभा ।
लखात गान नृत्य तैं सुरेन्द्र-लोक की प्रभा ॥१०४॥

करन्त मन्त्र द्वै घरी कियें सभा विसर्जनं ।
प्रकाश सोहु होत ना विना सपत्नतर्जनं ॥
व्यतीत डेढ जाम रात्रि ह्वै द्वितीय भोजनं ।
समग्र नग्र देश के बचाव को प्रयोजनं ॥ १०५ ॥

इतेक काज नित्य हैं निमित्त काज और जे ।
अनेक दान, होम, जाप होत साँझ भोर जे ॥

प्रहार है धनाढ्य पै पुकार दीन की भये ।
निवेरि नीर चीर होत राजद्वार पै गये ॥ १०६ ॥

दोहा ।

अँधरे कुष्ठी पांगुरे, जो कोउ विनु आधार ।
तिनकों ल्यावन कों सतत, शिविका करत प्रचार१०७

जित तित कीन्हे धर्म-सुत, वापी कूप तडाग ।
यथा प्रजा राजा तथा, वहु देवालय वाग ॥ १०८ ॥

" पाण्डव-यशेन्दु-चन्द्रिका "

छन्द पद्धरी ।

पुनि करत यहां शिक्षा प्रवोध ।
सुत उचित भतीजन नीति सोध ॥

अब मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रघुवंशमणि श्रीरामचन्द्र अपने और अपने भाइयों के पुत्रों को राजनीति का सार उपदेश करते हैं ।

मिथ्या न वचन बोल हिँ महीप ।
सब तजहिँ मूढ मैत्री समीप ॥ १०९ ॥

राजाओं को झूंठ नहीं बोलना चाहिये क्योंकि मिथ्या भाषण से मनुष्य निर्लज्ज और विश्वास के अयोग्य होजाता

है। सर्व प्रकार से मूर्ख दुर्जनों से बचना चाहिये क्योंकि उन के प्रेम और सहवास का परिणाम बहुत बुरा होता है।

दै स्वकर फेरि लीजै न दान।
नहि तोड़ि मित्र सों हित निदान॥

अपनी दी हुई वस्तु को पीछी नहीं लेनी चाहिये, लेने से परलोक व व्यवहार बिगड़ता है। सच्चे मित्रों से हित मत तोड़ो क्योंकि आपत्काल में वे ही साथ देते हैं।

पुनि सात व्यसन वरजित प्रकास।
सँग छांडि दुष्ट दुर्जन विसास॥ ११० ॥

(१) द्यूत (जुआ), (२) मदिरा, (३) आखेट (शिकार), (४) पर-स्त्री-गमन, (५) तन्द्रा (आलस्य), (६) छल, (७) क्रोध इन सात व्यसनों को सर्वथा तज दो नीच प्रकृति के मनुष्यों का संग और शत्रुओं का विश्वास मत करो।

मन्त्री रु वैद्य वयवृद्ध मान।
कबहू न विप्र गुरु तजहु कॉन॥

वयोवृद्ध अर्थात् राजकार्यों में निपुण और परीक्षित औषध देनेवाले मन्त्री (कामदार) तथा वैद्य का आदर करो। सच्चे ब्राह्मण और गुरु की काँन कभी भी मत तोड़ो।

आखेट करम फिरबो अकाज।
रिपु-भूमि माँझ नाहिं उचित राज॥ १११ ॥

राजा को अपने शत्रु की भूमि में आखेट करना और किसी विशेष कार्य के विना घूमना उचित नहीं है ।

मूरख से तजिये मूल मन्त्र ।
सब भाँति मोन भोजन स्वतन्त्र ॥

मूर्ख से किसी विषय की सलाह (प्राइवेट बात) न लेनी और विशेष सम्भाषण भी नहीं करना । अपने शरीर को हित पहुंचाने वाला और प्रमित (अन्दाज का) भोजन करना चाहिये ।

विधि गूढ मन्त्र करिये विशेष ।
षट करन पर्यौ विनसै अशेष ॥ ११२ ॥

मन्त्र (सलाह) गुप्त रहने का विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि उसके प्रकट होने पर भावी फल नष्ट होने के अतिरिक्त हानि होने का भी सम्भव रहता है ।

अनहेत हठ, जु अनुचित उपाधि ।
आरंभ निरर्थक कृति असाधि ॥

विना विशेष कारण हठ मत करो । अयोग्य पदवी मत धारण करो । ऐसे ही निष्फल और असाध्य कार्य का आरम्भ न करो ।

अह निस प्रजा रक्षा अखण्ड ।
दीजिये जथा अपराध दण्ड ॥ ११३ ॥

रात दिन अखण्ड भाव से प्रजा का पालन करो और सब को अपराध के अनुसार दण्ड देओ।

भव सावधान नृप मन्त्र भेद।
तज दुष्टता रु पर मरम-छेद॥

राजा के मन्त्र अर्थात् गुप्त बातों को प्रकट करने मे सावधान रहे। दुष्टता और दूसरे के मर्म को छेदन करे ऐसी बात कहने का परित्याग करदे।

द्विज-देव-बाल-धन त्रिक विकार।
विष अगनि जानि तजिये विचार॥ ११४॥

(१) ब्राह्मण (२) देवता और (३) बालक इन तीनों का धन हानिकारक होता है इस से उस को विष अथवा अग्नि के समान जानो और कदापि छीनने का विचार मत करो।

पीड़िये प्रजा नहिं निरपराध।
शुचि मानभङ्ग करिये न साध॥

बिना अपराध प्रजा को मत सताओ और शुद्धचित्त सज्जनों का अपमान मत करो।

मद, क्रोध, लोभ अरु काम, मोह।
दुर्वाद तजहु नृपचित्तद्रोह॥ ११५॥

अहङ्कार, क्रोध, लोभ, काम (विषयासक्ति) और मोह

अर्थात् अज्ञान तथा कटु वचन इन को छोड़ो और मन में राजद्रोह मत रक्खो ।

अनिषिद्ध सुख जु नहिं तज सशंक ।
करिये न दीन तैं कलह कंक ॥

अनिषिद्ध अर्थात् जिन का शास्त्र से निषेध नहीं है उन वस्तुओं के सुख को सशंक होकर मत तजो अर्थात् निःशङ्क होकर भोगो । दीन जन से कभी मत झगड़ो ।

पर-तीय दृष्टि गुरु-तिय प्रमान ।
करिये न अगम्या गमन कान ॥ ११६ ॥

परस्त्री को गुरुपत्नी के सदृश पूज्य भाव से देखो और अगम्या-गमन (व्यभिचार) की बात भी मत सुनो ।

इन्द्रियरिपु-निग्रह कर अशेष ।
विधिधर्म, सुजस संग्रह विशेष ॥

इन्द्रियों और शत्रुओं का दमन करना चाहिये अर्थात् चञ्चल मन को अभ्यास से स्थिर करो और अपना बल बढाओ । शास्त्रोक्त धर्म और निष्कलङ्क यश का संग्रह करो ।

विस्तार करहु नित साधु बुद्धि ।
सब काल प्रकाशहु जीव शुद्धि ॥ ११७ ॥

दिन दिन उत्तम उत्तम शिक्षाएं (नसीहतें) फैलाओ सदा अपने जीव की पवित्रता तथा ज्ञान में सावधान रहो ।

मानिये हितू शिक्षा अजाद ।
वर्जित कुसङ्ग मिथ्या विवाद ॥

अपना हित चाहने वालों की शिक्षा मानो । दुष्टों की सङ्गति और झूंठे तथा निष्फल विवादों से बचो।

पापी न बाक शिक्षा प्रमान ।
अनदोष दोष दीजे न आन ॥ ११८ ॥

पापी जनों की कही हुई शिक्षा का प्रमाण मत मानो। अनदोष अर्थात् जिस में दोष नहीं हो उस को मिथ्या दोष मत लगाओ।

कर अकर सीस करिये न कोय ।
हितवन्त निकटवर्ती सु होय ॥

अकर अर्थात् जिन से कभी कुछ कर (टैक्स) नहीं लिया जाता हो उन पर कोई कर नहीं लगाना चाहिये। सच्चे हितैषियों को पास रखने चाहियें।

पुनि दुष्ट बुद्धि वर्जित प्रधान ।
निहचै न दूत करिये अज्ञान ॥ ११९ ॥

कुबुद्धि मनुष्य को प्रधान अर्थात् कामदार न बनाओ। अल्प बुद्धि मनुष्य को कभी दूत अर्थात् सन्देशा कह कर स्वामि कार्य सिद्ध करने वाले चर के कार्य में मत भेजो।

सेनापति गढपति उचित शूर ।
व्है दुविधगती तज सुभट दूर ॥

सेनापति (फौज मुसाहिब) और गढपति (क़िलेदार) शूर वीर रखने चाहियें समय पर शत्रुओं से मिल जाने वाले वीरों को भी दूर ही रखने चाहियें ।

कामी, सलोभ, द्विज-कुकृतकार ।
करिये न ताहि धर्माधिकार ॥ १२० ॥

कामी, लोभी और ब्राह्मणों का बुरा करने वाले को धर्माधिकार नहीं देना चाहिये । अथवा व्यभिचारी, लालची और कुकृतकार अर्थात् चोरी आदि कुकर्म करने वाले निन्द्य ब्राह्मण को धर्म कार्यों में योग्य नहीं समझना चाहिये ।

संकल्प द्रव्य को सावधान ।
दीजिये आपने हाथ दान ॥

सङ्कल्पित द्रव्य सावधानता के साथ अपने हाथ से देना चाहिये क्योंकि साक्षात् देखने से अधिकारी अनधिकारी की परीक्षा हो सक्ती है ।

राजश्रि आप वश करैं राज ।
वश तासु भयें उपजै अकाज ॥ १२१ ॥

मन्त्री, राजकुमार, रानियां आदि राज्य-लक्ष्मी को अपने अधीन रखना चाहिये, स्वयं उन के वशवर्ती होना उचित नहीं क्योंकि उन के वश में होने से राज-कार्यों में विघ्न होते हैं ।

विस्तार धरम, विद्या, विवेक ।
इत्यादि दई शिक्षा अनेक ॥
सब भ्रात रहो सुत सावधान ।
नित नीति, धरम साधहु निदान ॥ १२२ ॥

धर्म, विद्या और विवेक आदि अनेक लाभदायक विषयों का प्रचार बढ़ाना चाहिये । इत्यादि अनेक शिक्षायें देकर आज्ञा दी कि सब भ्राता और पुत्र सावधान रहना और सदा "नीति" और धर्म का साधन करना ।

" अवतारचरित " महाकवि बारहठ नरहरिदासजी ।

कौन मोद-जुत जगत मैं,
कहा आचरज लखाय ।
कौन पन्थ, वार्ता सु का,
कह पुनि बन्धु जिवाय ॥ १२३ ॥

पञ्चम दिन अथवा छठे,
साग पचत जिन गेह ।
बिनु प्रवास विनु करज जग,
मोद-युक्त नरदेह ॥ १२४ ॥

दिन दिन प्राणीमात्र जे,
जम के आलय जात ।

थिरता चाहत पीछले,
फिर का अचरज तात ! ॥ १२५ ॥

वेद त्रिधा, शतधा स्मृती,
मुनि-मत भये अनेक ।
धर्मतत्व अतिगुप्त है,
पथ सत्पुरुष-विवेक ॥ १२६ ॥

मोह कटाह रु अग्नि रवि,
निस, दिन इन्धन जानि ।
काल पचावत भूत सब,
यहै वारता मानि ॥ १२७ ॥

तुम क्षेत्रज गुरु पाण्डुसुत,
होहु द्विरदपुरनाथ ।
परै जुधिष्टिर तोर पग,
तजहु सुयोधन साथ ॥ १२८ ॥

कहो आप जैसे हि करैं,
निर्लोभी सुत धर्म ।
तजौं सुयोधन रन-समय,
कहा बनै यहि कर्म ॥ १२९ ॥

" पाण्डवयशेन्दुचन्द्रिका "

सवैया।

निसि बासर प्रेम के पन्थ चलै,
हिय तैं हरिनाम विसारै नहीं।
घटि, वृद्धिय देखिकैं एक घरी,
धरका जिय में कछु धारै नहीं।
विधि को विसवास "ओंकार" कहैं,
अपनो बल, बुद्धि विसारै नहीं।
वहि मानस की बड़ि किस्मत है,
जो समै पर हिम्मत हारै नहीं ॥१३०॥

"मुक्तक"।

लाख घटो कुल कान न छाड़िये,
वस्त्र फटैं प्रभु और न दैहैं।
द्रव्य घटै मुख नाहिं न कीजिये,
दे न कोऊ अरु लोग हँसैहैं।
मेरे तो जाने समुद्र को पैरबो,
वेरो कहूँक किनारे लगै हैं।
हीमत छाड़े तैं कीमत जात है,
जायगो काल कलङ्क न जैहैं ॥ १३१ ॥

" जोधपुर महाराज श्रीमानसिंहजी "।

कवित्त।

लाभ लहरान लखि हानि हहरान पेखि,

पारदप्रभापै वर वह्निभा बन्यो करै।
लोक, कुल, वेद के विचार को विराव बार,
शम्भू जटाधारी गङ्ग-धार मैं सन्यो करै।
जानि जग पान सो अमान जस-खानि बनि,
पानि पकरैं की कानि प्रान पै तन्यो करै।
वीर "बखतावर" सुवीरन की यहै वृत्ति,
सिर पै बनै है ताहि गिर पै गिन्यो करै ॥ १३२ ॥

"स्वामी गणेशपुरीजी"

छप्पय।

प्रात धरम चिन्तमन, सहज हित मन्त्र विचारै।
चर चलाय चहुँ ओर, देश पुर प्रजा सँभारै।
राग द्वेष हिय गुप्त, वचन अमृत सम बोलै।
ठौर समय पहिचानि, कठिन कोमल गुन खोलै।
नित जतन करैं संचै रतन, न्याय मित्र अरि सम गनै।
रण में निशङ्क हुव संचरै, सो नरेन्द्र रिपुदल हनै १३३

"ताज"

येह विरद रजपूत प्रथम मुख झूठ न बोलै।
येह विरद रजपूत पर-त्रिय काछ न खोलै॥
येह विरद रजपूत आर्थ[1] बांटैं कर जोरैं।

(१) अर्थ (धन)।

येह विरद रजपूत एक लाखाँ बिच ओरैं ॥
जमराण पायँ पाछा धरै, देखि मतो अवधूत रो ।
करतार हाथ दीधी करद, येह विरद रजपूतरो ।१३४।

'मुक्तक'।

गीत १ ।

बरसाँ दसतणो बापर बदलै,
राजा कनै रहै रजपूत ।
देश विदेश चाकरी दोड़ै,
धजवड़ हथो कहाड़ै धूत ॥ १ ॥

सेल, बँदूक, तीर, खग साधन,
अस चढणो, रमणो आखेट ।
इतरी बात हाथ जदि आवै,
नर नरनाह कहावै नेट ॥ २ ॥

छळ बळ दाव धाव कामत छत,
दरसै जुधवेळा जमदूत ।
किरमर झालि रहै नित कानै,
राजा तदि मानै रजपूत ॥ ३ ॥
राज साळ पोसाळतणी रुख,
समझे चित लावै सरस ।

भाँति भाँति तरवीति हुवे भड़,
　　रीति ख्याति रँग राग रस ॥ ४ ॥
बायक साँच साम ध्रम बरतै,
　　ऋधि खरचै दृढ काछ रहै ।
सो रजपूत सही सरसाताँ,
　　लाखाँहि बाताँ सुजस लहै ॥५॥१३५॥

गीत २ ।

माईताँतणो अधिक मानीतो,
　　घणो अनीतो रहै घर ।
वरस तीस वोळावै बांसे,
　　आवे तद राजा अगर ॥ १ ॥
बकसी अरज करै वोलाड़ै,
　　आछो सो मुहुरत छै आज ।
सटको करै पाय थे लागो,
　　काल्हे कराँ पटारो काज ॥ २ ॥
हल वल करैं कादरी पहरैं,
　　ऊपर बाँधे पाघ अमेळ ।
वरतर हार जिसो बाडी रो,
　　मूठि अनै ताड़ी रो मोळ ॥ ३ ॥

फूटी अकल नाखि पग फाडा,
गाडा हाले नीठ गह ।
ऊटपटांग पागड़ो औंधो,
तुररो पिण और ही तरह ॥ ४ ॥

शात्रव हँसै साजना सालै,
पशूसमान मूरखो पूर ।
घाट कुघाट मूँछ कर घालै,
हालै राजातणी हजूर ॥ ५ ॥

साईवान देखि मन शङ्कै,
पाऊँ जाणै ठौड पित ।
होय दरबार सिरै हीळो हळ,
चक्रित रहै चल विचल चित ॥ ६ ॥

मिळताँ मिळै न मुजरो मानै,
आयाँ करै न आदर ऊठि ।
आसण मांडि चौफला ऐठैं,
परगह नै दे बैठै पूठि ॥ ७ ॥

नरपति जराँ सिकार नीसरै,
हळ बळ हुवै नकीबां हाक ।

आगे लियाँ तासलो ऐंठो,
  बैठो रहै फाड़ियाँ बाक ॥ ८ ॥

हुय हैराण पलाणे ह (य) वर,
  ताता खड़ै और ही तोर ।
आपण चित राखै आगारो,
  दुम ऊपर बागारो दोर ॥ ६ ॥

आगै गयां सिकार ऊछरै,
  ओ भी नांखै तुरँग उपाड़ि ।
ऊठी बाग पागड़ो उचकै,
  नीचो पड़ै तुड़ावै नाड़ि ॥ १० ॥

इसीड़ भांति हाजरी आवै,
  पछै करावै जपत पटो ।
पाछो जाय घरां पिछतावै,
  सझियो नह बापरो सटो ॥ ११ ॥

राजसाळ माहे रजपूताँ,
  रहियाँ अण रहियाँ आ रीत ।
राजी हुवै जिका चित राखो,
"गढवै" तो कहिया दुय गीत ॥१२॥१३६॥

भाग्य ।

—⊢—

दोहा ।

कछू सहाय न चल सकै, होनहार के पास ।
भीष्म युधिष्ठिर से जहाँ, भो कुरु-वंश-विनास ॥
अघटित को सुघटित करै, सुघटित कों अटकाय।
अटपटि गति भगवन्त की, जो मन नाहिं समाय ॥
हरि लिखिया सो विधि लिख्या, लिख २ घाल्या अङ्क
राई घटै न तिल बधै, रह रे जीव निशङ्क ॥

"मुक्तक,, ।

सोरठा ।

नहचै होय निशङ्क, चित नह कीजे चल विचल।
ऐ विधनारा अङ्क, राई घटै न राजिया ! ॥

"राजिया,, ।

वय तैं कुल तैं विभव तैं, विद्या तैं नहिं होत ।
अतिपोरुष अतिबुद्धिबल, पूरब कर्म उदोत ॥

"पाण्डवयशेन्दुचन्द्रिका,, ।

———

उद्यम ।

आलस वैरी तन बसत, सब सुख कों हर लेत।
त्यों उद्यम सों बन्धुता, कियें सकल सुख देत ॥
फल हू पावत करम तैं, बुधि हू करम अधीन ।
सोहू बुद्धि विचारिकै, कारज करै प्रवीन ॥

"भर्तृहरिशतक" ।

श्रम कीन्हे धन होत है, धन ही सुख को मूल ।
व्यवसाई अरु चतुर नर, उद्यम कों मत भूल ॥

"मुक्तक" ।

कवित्त ।

सामल ह्वै पीर में, शरीर मैं न राखैं भेद,
अन्तर कपट कछु होय तो उघरि जात ।
ऐसो ठाठ ठानै जातैं विना जन्त्र मन्त्रन तैं,
साँप हू को ज़हर उतारै तो उतरि जात ।
"ठाकुर" कहत या मैं कठिन न मानो कछु,
हीमत किये तैं कौन काज ना सुधरिजात ।
चारि जने चारि ही दिशा तैं चारि कोनैं गहि,
मेरु कों हिलायकै उखारैं तो उखरि जात ॥

"ठाकुर" ।

वीर।

सोरठा।

मन धीरन मन मोद, पीर करन पुनि कातरन।
वीरन करन विनोद, बरनूं "वीरविनोद" वर ॥ १ ॥

गुसांईजी "गणेशपुरीजी"।

दोहा।

अह भग्गा पारक्कडा, तो सखि मूझ पियेण।
अह भग्गा अह्मतणाँ, तो तिहँ मारिय पड़ेण ॥ २ ॥

ये इत घोड़ा येहि थळ, ये इत निसिया खग्ग।
यत्थ मनीसम जाणजइ, ते न बिवाळिय बग्ग ॥३॥

कविवर "हेमचन्द्र"।

ते ठाकर धन आपणो, देतो रजपूताँह।
धड़ धरती पग पायड़ै, अन्त्रावलि गीधाँह ॥ ४ ॥

ग्रीव न माडें देखणो, करणो शत्रु सिराह।
परणन्ताँ धण पेखियो, ओछी ऊमर नाह ॥ ५ ॥

ढोल सुणन्ताँ मङ्गली, मूँछाँ भौंहँ चढन्त।
चँवरी हा पहचाणयो, कँवरी मरणो कन्त ॥ ६ ॥

जसवँत गरुड़ न उड्डुही, ताळी त्रिजड तणेह ।
हाकाळियाँ ढूळा हुवै, पंछी अवर पुणेह ॥ ७ ॥

बारहठ "ईश्वरदासजी" ।

सादूळो वन सञ्चरै, करण गयन्दाँ नास ।
प्रबळ सोच भँवराँ पड़ै, हंसाँ होय हुलास ॥ ८ ॥

गाज इतै ऊखेळ गज, साँझळ दळ तरुमूळ ।
जागै नह थह मैं जितै, सजि हाथळ सादूळ ॥९॥

कविराजा "बांकीदासजी" ।

अमल कचोळाँ ऊझळै, होदाँ केसर रंग ।
पीव जके घर जावताँ, सीस न लीजे संग ॥१०॥

बिन माथै बाढै दळाँ, पोढै करज उतार ।
तिण सूराँरो नाम ले, भड़ बाँधै तरवार ॥ ११ ॥

भड़ सोही पहली पड़ै, चील विलग्गां चैंक ।
नैण बचावै नाहरा, आप कळेजो फैंक ॥ १२ ॥

दिन दिन भोळो दीसतो, सदा गरीबी सूत ।
काकी कुंजरै[1] काटताँ, जाणवियो जेठूत ॥ १३ ॥

---

(१) कुञ्जर (हाथी) ।

पैला सुणिया पाँच सै, घरमें तीर हज़ार ।
आधा किण सिर ओरसी, जै खिजसी जोधार ॥१४॥

इळा न देणी आपरी, हालरियां हुलराय ।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय ॥ १५ ॥

कृपण जतन धन रो करैं, कायर जीव-जतन्न ।
सूर जतन उण रो करैं, जिण रो षाधो अन्न ॥१६॥

भाभी देवर एकलो, सोचीजे न लगार ।
मूझ भरोसो नाहरो, फौजां ढाहणहार ॥ १७ ॥

रण खेती रजपूत री, वीर न भूलै बाळ ।
बारह बरसां बापरो, लहै वैर लङ्काळ ॥ १८ ॥

अठै सुजस प्रभुता उठै, अवसर मरियाँ आय ।
मरणो घररो माँझियाँ, जम न नरक लेजाय ॥ १९ ॥

भाभी कुळ खेती बिचै, भय न हुवे धव-भङ्ग ।
चित में खटकै माँस चव, कुलटा सोक कुसङ्ग ॥२०॥

"वीर सतसई" कविशिरोमणि "मिश्रण सूर्यमलजी" ।

---

(१) भूमि ।

सोरठा ।

आहव नै आचार, वेळाँ मन आघो वधै ।
समुझ कीरतीसार, रँगछै जाँ नै राजिया ! ॥२१॥

हीमत क़ीमत होय, हीमत्त बिन क़ीमत नहीं ।
करै न आदर कोय, रद कागद ज्यूँ राजिया!॥२२॥

नराँ नखत परमाण, जाँ ऊभाँ सक्कै जगत ।
भोजन तपै न भाण, रावण मरताँ राजिया!॥२३॥

शूरा सोहि पिछाणिये, लड़ै धरम कै हेत ।
पुरजा पुरजा कट पड़ै, कबहु न छोड़ै खेत॥२४॥

सब जग रिपु, हौं एक हौं, कृश हौं अरु असहाय ।
ऐसी शङ्का सिंह कै, सपने हू नाहिं भाय ॥ २५ ॥

जिण मारग केहर बुवो, रज लागी तिरणाँह ।
वै खड़ ऊभी सूखसी, नह चरसी हिरणाँह॥२६॥

व्है सनमुख अथवा परै, तम नासत हित तोर ।
नेह विहूणो रण नचै, वो भड़दीपक और ॥ २७ ॥

राजा रखै तो चार रख, मत रक्खो चाळीस ।
वै चाळीसों भागणाँ, वै चारों चाळीस ॥ २८ ॥

कलो परग्घै आपरी, सीख दिये साराँह ।
बधै न ऊमर कायराँ, घटै न जूझाराँह ॥ २९ ॥

कटकाँ तबल खुड़ाकिया, होय मरद्दाँ हल्ल ।
लाज कहै मर जीवड़ा, वैस कहै घर चल्ल ॥३०॥

इक कर वयस विलग्गिये, इक कर लग्गिय लाज ।
वय कह जोगनिपुर चलहु, लाज कहै भिड़ राज॥

मन विश्वासी जीवड़ा, कायर किम दौड़ैह ।
मरसी कोठै लोहकै, ऊबरसी चौड़ैह ॥ ३२ ॥

धीर नगारो राजरो, गह भरियौ गाजैह ।
दोख्यांरा मन ओधकै, सोख्यांरा छाजैह ॥ ३३ ॥

सन्मुख आये शत्रु को, जीत लेत धन धाम ।
मरबे ही में सुरग सुख, होत स्वामि को काम॥३४॥

रण भुवि म्यानन तैं कढी, भूप भटन करवाल।
जैसे बांबिन तैं कढ़ी, असित अहिन की माल॥३५॥

बेटा जायाँ कवण गुण, अवगुण कवण धियेण।
जो ऊभाँ धर आपणी, गंजीजै अवरेण ॥ ३३ ॥

मो ऊभाँ निरखै नहीं, तोकी बुरी नरेश ।
सो मरने तैं वीगड़ै, नगर महोबो देश ॥ ३७ ॥

"सखी ! तह्मीणां कन्थनै, घेर्यो घणा जणांह ।
सिर बोहराँ मुख मंगणां, बैरी चहूँ बळाँह ॥३८॥

वित बहुराँ दल मंगणां, बैरी खाग झळाँह ।
साराँ ही चूकावसी, जै ऊभो कुसळाँह" ॥ ३९ ॥

हूं पाछै आगै हुवै, आणी नाह घरेह ।
जो बाल्हो धण जीव हूं, आगै मूझ करेह ॥ ४० ॥

पन्थी ! एक सँदेसड़ो, बाबल नै कहियाह ।
जायाँ थाळ न बज्जिया, टामक टहटहियाह ॥४१॥

ढोल बजन्ता हे सखी !, पति आयो मुहिलैण ।
बागाँ ढोलाँ हूं चली, पति को बदलो दैण ॥ ४२ ॥

दळ मिलसी दिखणादरा, तोपाँ पड़सी ताव ।
या बिड़ली भिळसी ज दिन, घलसी मो सिर घाव ॥

भूँडण तो भूँडा जणै, हिरणी जणै सुघट्ट ।
पान खडक्काँ उठ चलै, थोमर चालै थट्ट ॥४४॥

हूँ जाणूँ धोळो सुत्रो, खाली हुयगो बग्ग ।
बाड़ै उणाहिज बाछड़ो, ऊठे ताडण लग्ग ॥४५॥

सिर नह सींगी संचरी, पगाँ न ठेठर बंध ।
दूध पिबन्तु बाछड़ू, दियो महाभड़ कन्ध ॥ ४६ ॥
कळियो जाझा कीच में, रजवट हंदो रत्थ ।
साँवतिया सुलतान रा, तू काढण समरत्थ ॥ ४७ ॥
" जोधपुर महाराज श्रीमानसिंहजी " ।

गूधळियो तोइ गंगजळ, षांषळियो तोइ दीह ।
बीखायंत तोइ खींवरो, साँकळियो तोइ सीह ॥४८॥
तार मान बाहर लियाँ, भड़ जग जाहर भूप ।
आयर थाहर ऊपराँ, रुपियो नाहररूप ॥ ४९ ॥
सुण कुंभा ! रावण कहै, आप भणंकी अङ्क ।
पाय पड्याँ नह ऊबरै, लाखुँ हि बाताँ लङ्क ॥ ५० ॥
पड़वै पोढन्ताँह, करड़ावण हरकोइ करै ।
धाराँ में धसताँह, आँसू आवै ईलिया ! ॥ ५१ ॥
"सुकवि"

कवित्त ।

धनुष पै गौन महाबली पण्डुनन्दन को,
मत्तगजराज पै ज्यों केहर लसतु है ।
दीन द्विज भेष अग्नि भस्मावछन्न शेष,
देख बालवृद्ध युवा ब्राह्मण हँसतु है ।

सुयोधन आदि बड़े शूर देश देशन के,
भूपन के तेज राधा-वेध लैं नसतु है।
नाना ये पटाम्बर की कंमर खुलत जात,
देखो ये फटाम्बर की कंमर कसतु है॥५२॥

जयद्रथ को मृत्यु औ अजय सुयोधन को,
छहूं वीर धीरन को अजस लखा गयो।
विजय युधिष्ठिर को सुजस किरीटीजू को,
द्रोन को पतन नाहिं जतन रखा गयो।
सुभद्रा को शोक अहवात नाश उत्तरा को,
केऊ नृप पुत्रन कों काल ज्यों सिखा गयो।
इतने पदारथ को चक्रव्यूह रङ्ग-भू मैं,
अरजुनी के आगम तैं आगम दिखा गयो॥५३॥

सवैया।

मात पिता जु सुभद्रा धनञ्जय,
द्वै पख तेज कभी विसरै नाँ।
ज्येष्ठ तो कष्ट मैं दृष्ट परै न,
कनिष्ठ की कष्ट मैं पृष्ठ फिरै नाँ॥ ५४॥

तात को भ्रात डरै बहु शत्रु में,
भ्रात को तात सदैव डरै नाँ।
काके की होड़ भतीज करै नहिं,
काको भतीज की होड़ करै नाँ ॥ ५५ ॥

कवित्त।

सुयोधन कोप किये सुभद्रानन्द पै चल्यौ,
ता कों देखि सेनापति द्रोन अकुलायो है।
बार बार बरजों मैं बरज्यो न मानै शठ,
मेरी दृष्टि बाल प्रलै-काल सो लखायो है।
अकेलै कुमार लाखों लोक तेरी वाहिनी के,
मारि कै अवारि जमलोक कों पठायो है।
वासवी को छत्र्यो ज्यों असावधान जात कितैं,
आगे देखि महावीर वासवी को जायो है॥५६॥

कवित्त।

प्रात भएँ अग्रज तिहारो सो सँवारी रथ,
सारथी ह्वै सैन्य बीच अभय बिहारी है।
कपि की गरज घोस देवदत्त गाण्डिव को,
रिपु रिपु-नारिन के गरव प्रहारी है।

नामाङ्कित बान मेरे पानि को सँजोग पाय,
आछे २ वीरन के प्रान को अहारी है।
जैसैं अत्र रोवे तेरे पुत्र की कलत्र प्यारी!,
तैसैं पुत्र-शत्रु की कलत्र तू निहारी है॥५७॥

दोहा।

प्रात अस्तलों नां रहै, जयद्रथ वा मम प्रान।
दोउ रहै तो होहु भल, मोकों नरक निदान॥५८॥
शरण युधिष्ठिर कृष्ण की, अथवा भजि नहिं जाय।
जो इन्द्रादि सहाय तोहुँ, पितृन दैहुँ मिलाय॥५९॥
"पाण्डवयशेन्दु-चन्द्रिका,,।

कवित्त।

इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सु अम्भ पर,
रावन कुटुम्ब पर रघुकुलराज है।
पौन वारिवाह पर, शम्भु रतिनाह पर,
ज्यौं सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दुण्ड पर चीता मृग झुण्ड पर,
"भूषन" वितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंश पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं मलेच्छ वंश पर शेर "शिवराज" है॥६०॥

बाजै बंब चढ्यो साह गाज़ी कला भूप साज़ी,
राज़ी "शिवराज" राज़ी "भूषन" बखान तैं।
चण्डी की सहाय महि मण्डी की जितावै रौंड,
छण्डी राना रावजे न दण्डी भये आन तैं।
मन्दी-भूत रज रवि वन्दी-भूत हठधर,
नन्दीभूत पति भो अनन्दी अनुमान तैं।
रङ्की-भूत दुयन करङ्की-भूत दिगदन्ती,
पङ्की-भूत समुद्र सुलङ्की के प्रयान तैं ॥६१॥

भूषण कवि "शिवाबावनी" ।

चाली नृप भीम पै कराली नृप भीम चमू,
नक्रमुखी तोपन के चक्र चरराटे हों।
आपनो रु औरन को सोर न सुनाइ दोर,
घोरन की पोरन के घोर घरराटे हों।
मीर हमगीरन के तीर तरराटे वर,
वीरन वपुच्छद के बाज बरराटे हों।
हूर हरराटे धर धूज धरराटे शेष,
सीस सरराटे कोल कन्ध कर्राटे हों ॥६२॥

"स्वामी गणेशपुरीजी"

कवित्त।

अग्नि-अस्त्र ही तैं व्योम बीच कीन्ही ज्वाल-माल,
मेघ-अस्त्र ही तैं ताहि ज्वाल को बुझायकै।
वायु-अस्त्र ही तैं मेघ, गिरि-अस्त्र ही तैं वायु,
वज्र-अस्त्र ही तैं गिरिवृन्द को मिटायकै।
कभी भूमि अन्तरिच्छ अश्व गज पीठ कभी,
कभी स्थूल सूच्छम अदृष्टता दिखायकै
धन्य पृथा-कूख-जायो अर्जुन त्रिलोकजेता,
पाण्डुनन्द ठाढो यों अनेक शोभा पायकै ॥६३॥

"पाण्डव-यशेन्दु-चन्द्रिका"।

धर्मवीर।

मरजाऊं मांगूं नहीं, निज स्वारथ के काज।
परमारथ के कारणे, मोहि न आवै लाज ॥ ६४ ॥

"मुक्तक"

पृथावंश मैं प्रगट हूं, चहिये माद्री-वंश।
धर्मनिषेधक बात कों, कहत न महत्त प्रशंश ॥६५॥

"पाण्डव-यशेन्दु-चन्द्रिका"।

दान वीर।

सीखे कहाँ नवाबजू !, ऐसी दैनी दैन।
ज्यौं ज्यौं कर ऊँचे करो, त्यौं त्यौं नींचे नैन ॥६६॥

"गङ्ग कवि,,।

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरैं, या तैं नीचे नैन ॥ ६७ ॥

"नवाब खानखाना,,।

राणे भीम न रक्खियो, दत बिन दीहाड़ोह।
हय गयन्द देतो हथाँ, मुवो न मेवाड़ोह ॥ ६८ ॥
लोडाणी जस लूटियो, माडाणी जग मांहि।

---

(१) जयपुर राज्य में एक "खोरा,, नाम का ग्राम है। वहां के ठाकुर खंगारसिंहजी बड़े योग्य क्षत्रिय थे। एक समय कोई बारहठ इन के यहां आये हुए थे। उन्होंने अर्धरात्र के पीछे अपने भृत्य को (जो निद्रा से घिरा हुआ था) हुक्का भर के लाने को जगाया। वह तो नहीं जगा परन्तु बारहठ जी का वचन ठाकुरसाहब ने सुना और स्वयं हुक्का भर के ले आये। बारहठजी ने उन को अपना भृत्य जानकर धमकाया और दो चार कोरड़े भी मारे। सुयोग्य ठाकुरसाहब ने कुछ नहीं कहा और जाकर सो गये। प्रातः काल जब वह भृत्य उठा तो उन्हों ने उस को फिर धमकाया। परन्तु रात्रि को वह तो था ही नहीं, उसने कहा महाराज रात्रि को मैं नहीं था। उस समय ठाकुरसाहब ने अपना हुक्का भरना प्रकट किया तो बारहठजी ने यह दोहा कहा था।

कीरतहन्दा कोरड़ा, जातां जुगाँ न जाहि॥ ६९ ॥
दोयं उदैपुर ऊजळा, दुइ दातार अटल्ल ।
इक तो राणो जगतसी, दूजो टोडरमल्ल॥ ७० ॥
असे² चढियो राजा अभो, कवि चाढे गजराज ।

---

(१) महाराणा जगतसिंहजी बडे उदार थे उन्होंने सेखावाटी " उदयपुर " के ठाकुर " टोडरमलजी " का बहुत यश सुना तो अपने " सिंढायच " बारहठ " हरिदासजी " को उन की परीक्षार्थ भेजा । टोडरमलजी यह समाचार सुनकर " कहार " का वेश बना अपनी हद्द से भी आगे ही उन के संमुख चले गये और उनकी पालकी के जा जुते जब बारहठजी टोडरमलजी के ग्राम में पहुंचे तो कहने लगे कि "टोडरमल " का यश मिथ्या है वह अपने ग्राम में आपहुंचने परभी हमारे संमुख नहीं आया यह सुन "टोडरमलजी " पालकी से अलग होकर बोल उठे और कहा कि " मैं तो अपनी सीमा के भी आगे से ही आप की सेवा में हूं " यह देख बारहठजी चकित हुए और प्रसन्न होकर यह दोहा कहा । धन्य है " टोडरमलजी " की उदारता ।

(२) जोधपुर महाराज अभयसिंहजी ने "कविया " चारण " करणीदानजी " का जिन्हों ने सूर्यप्रकाश रचा था बहुत संमान किया था । जब महाराज ने उक्त कवि को हाथी दिया उस समय कविराज गज पर सवार थे और महाराज अश्वारूढ हुए और कवि के स्थान तक ऐसे ही पहुंचाने गये । "करणीदान जी " की विद्वत्ता और महाराज की गुणग्राहकता प्रशंसनीय है।

पोहर हेक जलेब में, मोहर हले महाराज ॥७१॥

मात, पिता सह बीसरै, बन्धू बीसारेह ।
शूराँ पूराँ बातड़ी, चारण चीतारेह ॥ ७२ ॥

सवैया ।

पोढन कों तृण के पथरे अरु,
ओढन कों पट द्वै बकली के ।
भोजन याम मिलै कबहू,
कबहूक भखे फल द्वै कदली के ।
सम्पति को परवेश यहै रु,
महा दुख देह विदेहलली के ।
ता दिन लङ्क दई जु विभीषण,
हाथ बदौं रघुनाथ बली के ॥ ७३ ॥

कवि "केशवदासजी," ।

कवित्त ।

वाहन अभूत हय सूत पोन-पूत ध्वज,
छत्रि-गुण-पात्र शिष्य सात्त्विकी सुहाये की।
भीष्म, द्विज द्रोणी, द्रोण, कर्ण, कृप, दुःशासन,
कौन गात कीर्ति ना विराट जीति आये की।
बरम निपात कीन्हे तात सुख व्रात चीन्हे,

वीरता विख्यात है किरीटी नाम पाये की ।
दान की नहर ताकी लहर दुरूह देखो,
प्रात की प्रहर गी ठहर रविजाये की ॥७४॥

स्वामिगणेशपुरीजीकृत "वीरविनोद" ।

सूचना ।

बूंदी महाराज के प्रधान "मिश्रण" चारण "चण्डीदानजी" के पुत्र कविवर "सूर्यमल्लजी" आधुनिक समय में एक अद्वितीय विद्वान् होगये हैं । संस्कृत, प्राकृत, शूरसेनी आदि अनेक भाषाओं में इन का स्वातन्त्र्य था इन की कविता बहुत सरस और प्रभावोत्पादक है । उक्त कवि ने कई ग्रन्थ निर्माण किये हैं जिन में "वंश-भास्कर" मुख्य है और बहुत विस्तृत है । वंश-भास्कर में राजाओं का इतिहास लिखा है । ऐसा ग्रन्थ बनाना कुछ सामान्य कार्य नहीं है किन्तु इन की कुशाग्रबुद्धि, उत्तम प्रकार से पढ़ी हुई विद्या, अनवरत अभ्यास और असाधारण ईश्वरानुग्रह का प्रभाव है । "वंश-भास्कर" के एक छन्द का भाग और चार कवित्त यहां लिखे गये हैं । जो उक्त कविवर की रचना का एक नमूना है । ये कवित्त रतलाम महाराज को किसी अवसर पर भेजे थे ।

---

(१) अर्जुन । (२) कर्ण ।

छन्द दुर्मिला ।

दुव सेन उदग्गन खग्ग सुभग्गन,
  अग्ग तुरग्गन बग्ग लई ।
मचि रंग उतंगन दंग मतंगन,
  सज्जि रनंगन जंगजई ।
लगि कम्प लजाकन भीरु भजाकन,
  वाक कजाकन हाक बढी ।
जिम मेह ससंबर यों लगि अम्बर,
  चंड अडंबर खेह चढी ॥ ७५ ॥

फहरक्कि दिशान दिशान बड़े,
  बहरक्कि निशान उडैं बिथरैं ।
रसना अहिनायक की निसरैं कि,
  परा झळ होळिय की प्रसरैं ।
गज-घण्ट ठनंकिय भेरि भनंकिय,
  रंग रनंकिय कोचकरी ।
पखरान झनंकिय बान सनंकिय,
  चाप तनंकिय ताप परी ॥ ७६ ॥

धमचक्क रचक्कन लग्गि लचक्कन,
  कोल मचक्कन तोल कढ्यो ।
पखरालन भार खुसी खुरतालन,
  व्याल कपालन साल बढ्यो ।

डगमग्गि शिलोच्चय-शृङ्ग डुले,
झगमग्गि कृपानन-अग्गि झरी।
बजि खल्लतबल्लन हल्ल उझल्लन,
झुम्मि हमल्लन घुम्मि भरी॥ ७७॥

कवित्त।

मालवमुकुट बलवन्त! रतलामराज,
तेरो जस जाती फूल खोलें मोद खासा कों।
करण, दधीचि, बलि, केतकी गुलाब दाब,
परिमल पूर रचै तण्डव तमासा कों।
मोसे मधुलोभिन कों अधिक छकाय छाय,
महकि मरन्द मेटै अर्थिन की आसा कों।
चंचरीक कविन समीप ही तैं सूंघ्यो तो हू,
दूरि, ही सों दपटि निवाजें देत नासा कों॥ ७८॥

ऊँचो जो न होय तो कहा है होयबे में फल,
पंथ पैं न होय तो जो उच्चता उघारै नां।
छाया जो न होय तो वृथा ही पंथ ह्वैबो श्रान्त,
अध्वग न आवै तो सुछाँह छवि धारै नां।
ऐसै हू वृथा जो फल फूल विधुरा न मेटैं,
अध्वनीन याही एक आश्रय सों हारै नां।

पारिजात! पंथ के नरेश "बलवन्त!" फलि,
फूलिके नम्यो तो फेरि को कर पसारे नां ?॥७९॥

विद्या भूमि में न होते अर्थ बीज अङ्कुरित,
छत्र धर्म दादुर दुराकृति दरसतो।
मेधावी मयूरन को मोद मिटि जातो शूर,
वीरन को मान मीन पङ्क न परसतो।
अतुल उदार "बलवन्त" रतलामराज!,
चातक चतुर मन ताप न तरसतो।
वाड़व दरिद्र कविसागर सुखै तो जोपै,
मालवेन्द्र! तू न मास बारह बरसतो ॥ ८० ॥

जामें होय जो गुन बढ्यो अति विशेषता सों,
सोही जग अन्तर सराहिबे के बंगैहैं।
होत जे सुकवि ते वृथा गुन बखानैं नाहिं,
सत्य होत सोही सबही के मन रंगैहैं।
मालवमुकुट "बलवन्त" रतलामराज!,
माँगिबे में ऐब न तो कीरति कुढंगैहैं।
रीझ रीझ तोपर लिखे सो कविधर्म यातैं,
यों न जानिलेनी ए कवित्त रङ्क मंगैहैं ॥ ८१ ॥

प्रसिद्ध कविशिरोमणि "मिश्रण" सूर्यमलजी।

शान्त ।

कोऊ कै धन माल है, कोऊ कै परिवार।
"तुलसीदास" गरीब कैं, राम नाम आधार॥१॥
तुलसी सोही चतुरता, ईश शरण जिन लीन।
पर-धन पर-मन हरनकों, वेश्या बड़ी प्रवीन॥२॥
ना कछु कर्यो न कर सक्यो, ना कछु करने योग।
तुलसी आय सँसार में, भले हँसाये लोग॥ ३ ॥

महात्मा "श्रीतुलसीदासजी,, ।

"कवीर" तँहँ जाइय जहां, अपना नाहीं कोय।
मट्टी भखै जिनावरां, सहज मोहोच्छा होय॥४॥

महातमा "कवीरजी,, ।

"दादू" पछतावा रह्या, सके न ठाहर लाय।
अरथ न आया रामकै, यह तन योंही जाय॥५॥
तुम कों भावै और कुछ, हम कुछ कीया और।
महर करो तो छूटिये, नाहीं तो नहिं ठौर॥ ६॥
दादू जैसा नाम था, तैसा लीन्हा नाहिं।
काती करसे खत ज्यौं, हौंस रही मन माहिं॥७॥

महातमा "दादूजी,, ।

"दरिया" बहु बकवाद तज, कर अनहदसों नेह।
औंधा कळशां ऊपरै, क्यौं बरसावै मेह ॥ ८ ॥

"दरियाजी„

ऊठ "फरीदा !" जागरे, जागन की कर चौंप ।
यह दम हीरा लाल है, गिण गिण रबकों सोंप ॥९॥
ऊठ "फरीदा !" जागरे, झाड़ू देह्न मसीत ।
तू सोवै रब जागतां, किस बिध बन परीत ॥१०॥

"फरीदा„।

केइ फूले केइ फल गये, "सुन्दर" नये नयेह ।
केते बाग़ जहान मैं, लग लग सूखि गयेह ॥११॥
पतित उधारण भयहरण, हरि अनाथ के नाथ ।
कह "नानक" तिँह जानिये, सदा बसत तुम साथ १२
न दे साद काइँ नारियण, साद दियो जिण सन्त।
आपो नाम उचारतां, धेनो (हि) कान धरन्त ॥१३॥

हरिभक्त बाहरठ "ईश्वरदासजी„ कृत "हरिरस„ ।

"सम्मन!„ रोवै कौनकौं, हँसै सु कौन विचार ।
गये सु आवन के नहीं, रहे सु जावनहार ॥ १४ ॥
नदी किनारे देखिये, "सम्मन„ सब संसार ।
के उतरे के ऊतरैं, (के) बुगचा बाँधि तयार ॥ १५ ॥

"सम्मन„ कविवर ।

"जसवँत" शीशी काचकी, जैसे नर की देह।
जतन करन्ताँ जावसी, हर भजि लाहा लेह॥ १६॥
"जसवँत" बास सराय का, क्या सोवै भरि नैन।
श्वास नेगारे कूँचके, बाजत हैं दिन रैन॥ १७॥
दस दुवार को पींजरो, तामैं पंछी पौन।
रहन अचंभो है "जसा", जात अचंभो कौन॥ १८॥

जोधपुर महाराज "जसवन्तसिंहजी" अड़े।

ईश नाम जपते रहो, जब लग घट मैं प्रान।
कबहुक दीनदयाल कै, भनक परैगी कान॥१९॥
नीच नीच सब तरिगये, ईश शरण जिन लीन।
जातिहि के अभिमान तैं, डूबे बहुत कुलीन॥२०॥
रन, वन, व्याधि, विपत्ति मैं, वृथा डरै जनि कोय।
जो रक्षक जननी-जठर, सो हरि गया न सोय॥२१॥
जाको रक्खै साइयाँ, मार न सकै कोय।
बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय॥२२॥

'मुक्तक'।

"हिय में हरि हेर्‌यो नहीं, हेरत फिर्‌यो जहान।
ज्यौं निजमें मृग भूलि मद, खोजत गहन अज़ान" २३

महात्मा "दादूजी"।

मनुज देह प्रापत भयो, सब प्रापत को मूल ।
जामैं हरि प्रापत नहीं, सब प्रापत मैं धूल ॥२४॥
मनका फेरत जुग गया, गया न मन का फेर ।
करका मनका छाडिकै, मनका मनका फेर ॥२५॥
मन पापी मन पारधी, मन चञ्चल मन चोर ।
मन के मतै न चालिये, पलक पलक मन और ॥२६॥
चलना है रहना नहीं, चलना बिसवा बीस ।
ऐसे तनिक सुहाग पै, कहा गुथावै सीस ॥ २७॥
कहँ जाये कहँ ऊपने, कहाँ लडाये लाड ।
का जाने किस खाडमें, पड़े रहैंगे हाड ॥ २८ ॥
लूखा सूखा खायकै, ठंडा पानी पीव ।
देख परायी चोपड़ी, क्यौं ललचावै जीव ॥ २९ ॥
गोधन, गजधन, वाजिधन, और रतनधन खान ।
जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूलसमान ॥३०॥
तन थिर, मन थिर, वचन थिर, सुरत निरत थिर होय ।
"कबीर!" ऐसे पलक कों, कलप न पहुँचै कोय ॥३१॥

सवैया ।

पाँवँ छौं कर गौन हरी दिश,
फेर ये पाँवँ चलैं न चलैं ।

जीभ छतैं कर गान हरी फिर,
"दासस्वरूप" हलैं न हलैं।
नैंन छतैं लख रूप विराट को,
फेरि ये नैंन खिलैं न खिलैं।
श्रौन छतैं हरि-कीरति कों सुनि,
फेरि ये श्रौन मिलैं न मिलैं॥ ३२॥

" पाण्डवयशेन्दुचन्द्रिका "

सवैया।

कोन कुबुद्धि भई घट भीतर,
तू अपने प्रभुतैं मुख चोरै।
भूलि गयो विषयासुख मैं शठ!,
लालच लागिरह्यो अति थोरै।
ज्यौं कोउ कंचन छार मिलावत,
लैकर पत्थर से नग फोरै।
"सुन्दर!" या नरदेह अमोलक,
तीर चढी नवका कित बोरै॥ ३३॥
जो दस बीस पचास भये शत,
होइ हजार तो लाख मँगैगी।

कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य,
धरापति होन की चाह जगैगी ।
स्वर्ग पताल को राज करे,
तृष्णा अधिकी अति आग लगैगी।
"सुन्दर" एक सँतोष बिना शठ !,
तेरी तो भूख कभी न भगैगी॥३४॥
"सुन्दर-विलास" ।

घूमत द्वार मतंग अनेक,
जँजीर जरे मद अम्बु चुमाते ।
तीखे तुरंग मनोगति चञ्चल,
पौनके गौनहुको ज़ु लजाते ।
भीतर चन्द्रमुखी अवलोकत,
बाहर भूप खरे न समाते ।
ऐसे भये तो कहा "तुलसी" जो,
पै जानकीनाथके रंग न राते॥ ३५॥
महात्मा "श्रीतुलसीदासजी" ।

छप्पय ।

कबहुक खग मृग मीन,
कबहु मर्कट तनु धरिकै ।

कबहुक सुर नर असुर,
नागमय आकृति करिकै।
नटवत लख चौरासि,
स्वाँग धरि धरि मैं आयो।
हे त्रिभुवन के नाथ!,
रीझको कछू न पायो।
जो हो प्रसन्न तो देहु अब,
मुकति दान माँगूँ बिहस।
जो पै उदास तो कहहु इम,
मत धर रे नर! साँग अस ॥३६॥

नव्वाब "खानखाना" ।

कवित्त।

एक सास खाली मत खोयलो खलक बीच,
कीच रु कलङ्क अङ्ग धोयलै तो धोयलै।
उर अँधियार पापपूरसों भऱ्यो है तामें,
ज्ञान की चिरागै चित जोयलै तो जोयलै।
मिनखा जनम बार बार ना मिलैगो मूढ!,
पूरण प्रभूसे प्यारो होयलै तो होयलै।

देह क्षणभङ्ग यामें जनम सुधारिबो सो,
बीजके झमंकै मोती पोयलै तो पोयलै ॥३७॥

प्रास्ताविक ।

दोहा ।

सरस्वति के भण्डार की, बड़ी अपूरब बात ।
ज्यौं खरचै त्यौं त्यौं बधै, विन खरचें घटि जात ॥१॥
कह कामणि कह कवित रस, कह धानुक्ख शरेण ।
लोयण मन तन लागताँ, सीस न धुनिये जेण ॥२॥
ज्यौं कदलीके पात मैं, पात पात मैं पात ।
त्यौं चतुरन की बात मैं, बात बात मैं बात ॥ ३ ॥
सरस कविन के हृदय कों, बेधत द्वै सो कौन ।
असमझवार सराहिबो, समझवार की मौन ॥४॥
कहा लङ्कपति लै गयो, कहा करन गय खोय ।
जस जीवन अपजस मरन, कर देखो सब कोय ॥५॥
सीख शरीराँ ऊपजै, सुणी न लागै सीख ।

---

(१) विजुली ।

अणमाँग्या मोती मिलैं, माँगी मिलै न भीख ॥६॥

ऊजड़ खेड़ा फिर बसै, निरधनियाँ धन होय ।
बीता दिन नह बाहुड़े, मुवा न जीवै कोय ॥७॥

कहँ गोरख कँहँ भरथरी, कहँ गोपीचँद गौड़ ।
सिद्ध गयाँ ही पूजिये, सिद्ध रह्याँ की ठौड़ ॥ ८ ॥

लोहाँ लकड़ाँ चामड़ाँ, पहलाँ किसा बखाण ।
वहू बछेराँ डीकराँ, नीमटियाँ परमाण ॥ ९ ॥

कहणी मीठी खाँडसी, करणी विषसी होय ।
जै कहणी करणी हुवै, (तो) विषही अमृत होय ॥१०॥

हुती गरज मन और था, मिटी गरज मन और।
"उदैराज" मनकी प्रकृति, रहै न एकै ठौर ॥११॥

साध सराहैं सो सती, जती जोखिता जान ।
"रज्जब" साँचे शूर के, बैरी करै बखान ॥ १२ ॥

रज्जब पारस परसिकै, मिटिगो लोह विकार ।
तीन बात तौ नां मिटी, बाँक धार अरु मार ॥१३॥

पञ्च दून तनकी दशा, अपनी अपनी बार ।
एक होत हैं छत्रपति, एकहि होत खुवार ॥ १४ ॥

नाच कूद मद पीवते, घर घर होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़े, बैठन लागे काग ॥१५॥

सत मत छोड़ो हे नराँ !, सत छोड्याँ पत जाय।
सतकी बाँधी लच्छमी, फेर मिलैगी आय ॥ १६ ॥

साईं टेढ़ी अक्खियाँ, बैरी खलक तमाम।
टुकेक झोला महर का, लक्खूँ करैं सलाम ॥ १७ ॥

साईं तोसौं बीनती, ये दुइ भेळा रक्ख।
जीव रखै तो लाज रख, लज बिन जीव न रक्ख॥१८॥

जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ क्षमा तहँ आप॥१९॥

प्रीति न कीजे देह धरि, काहूतैं "जगदीस"।
जो कीजे तौ दीजिये, तन, मन, धन अरु सीस ॥२०॥

प्रीति निभानी कठिन है, प्रीति करो मत कोय।
भङ्ग भखन तौ सहज है, लहरैं मुश्किल होय ॥२१॥

येहो तोटा ! बदबख्त !, तो पर परी न घात।
सुघरन की उघरन लगी, कुघरनकीसी बात ॥२२॥

"समन" पराये बागमैं, दाख तोरि खर खात।
अपनो कछू न बीगरै, असही सही न जात ॥२३॥

बहु खारिक बहु खोपरा, बहुरे जनम धरेहु ।
रे कुंजर रेवा नदी, सपन हि घूँट भरेहु ॥ २३ ॥

"मुक्तक"।

जिन दिन देखे वे सुमन, गई सु बीति बहार ।
अब अलि! रही गुलाबकी, अपत कटीली डार ॥२४॥

इही आस अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल ।
ह्वै हैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारनि वे फूल ॥२५॥

"बिहारी सतसई"।

यह दरखत हैं अगरके, अली! भूलि मत जाय ।
हरे भरे नहिं कामके, सूखें गन्ध सवाय ॥ २६ ॥

हंसा! सरवर ना तजो, जे जल खारो होय ।
डाबर डाबर डोलताँ, भला न कहसी कोय ॥२७॥

पान झड़न्ता देखकै, हँसीज कूँपळियाँह ।
मो बीती तो बीतसी, धीरी बापड़ियाँह ॥ २८ ॥

कहा हेमंत शीतल भयो, हरे रौंख जल जायँ ।
तातैं तो ग्रीषम भलो, जरे हरे होजायँ ॥ २९ ॥

काँधै केसर बाँधकर, जो कीन्हो मृगराज ।
कूकर क्यौं करिहैं कहो, करिकुल कम्पन गाज ॥३०॥

"मुक्तक"।

गजमुखतैं तन्दुल गिर्यौ, घट्यो न तासु अहार ।
सो ले चली पिपीलिका, पालनकों परिवार ॥३१॥

" फुटकल " ।

जिण बन भूलि न जावता, गैंद गवय गिड़राज ।
तिण बन जम्बुक ताखड़ा, ऊधम मंडै आज ॥३२॥

" कविराज मिश्रण सूर्यमलजी बूंदी " ।

सोरठा ।

हेत विहूणा हाथ, कांई व्है आघा कियाँ ।
बाळ अलूणी बाथ, नैण सलूणा नां मिळै ॥३३॥
आसी सावण मास, वरषा ऋतु आसी बळै ।
साईंनारो साथ, बळै न आसी "बींझरा!" ॥३४॥

"मुक्तक,, ।

झ्यांड़, जोख, झष, भेक, वारिज कै भेळा बसै ।
इशकी भँवरो एक, रसकी जाणै "राजिया!" ॥३५॥

---

(१) इस पुस्तक के पृष्ठ १६ की टिप्पणी से प्रकट है कि राजिये को सम्बोधन करके जितने सोरठे प्रचलित हैं उन में से अधिकांश खिड़िया कृपारामजी के बनाए हुए हैं । उन्हीं कृपारामजी का बनाया हुवा यह सोरठा है । इस का कारण यह है कि पृष्ठ ५६ में जो अङ्क ६८ का यह दोहा कि:—

राणै भीम न रक्खियां, दत बिन दीहाड़ोह ।
हय गयन्द देतो हथां, मुनो न मेवाड़ोह ॥

दृति-पुट घट सम अज्ञ जन, मेघ समान सुजान।
पढें वेद इहिं हेतु तैं, ज्ञानी पैं तजि आन॥ ३६॥
"विचार सागर"।

जैसे गन्ध विगन्ध मिलि, निकसत है सब ठोर।
देखो महिमा पवन की, आप और को और॥३७॥

जो दिन में देखै नहीं, अपने दृगन उलूक।
जगत प्रकाशक भानुकी, कहा कहावत चूक॥३८॥
"मुक्तक"।

छपा है वही इस सोरठे के बनने का कारण है। सीकर में रावराजाजी लछमणसिंहजी के समय में बहुत कवि लोग रहते थे उन की परीक्षा के लिये इस दोहे का पूर्वार्द्ध अर्थात् "राणै भीम न रक्खियो दत बिन दीहाडोह,, लिखा कर पूर्ती के लिए उदयपुर से सीकर भेजा गया। कृपारामजी वृद्ध होने के कारण अपने गांव में रहते थे परन्तु और कवि सीकर की राजसभा में बहुत विद्यमान थे परन्तु किसी से इस की पूर्ती न हो सकी तब यह पूर्वार्द्ध कृपारामजी के पास भेजा गया तो उन्होंने "हय गयन्द देतो हथाँ, मुवो न मेवाडोह,, यह उतरार्द्ध लिख भेजा। जिस से दोहा पूर्ण होगया। इसी के साथ " भ्याड, जोख, झष, भेक ,, यह दोहा अपनी ओर से लिख भेजा। इस का प्रयोजन यह है कि समुद्र में सभी रहते हैं परन्तु भंवर की योग्यता को दूसरे नहीं पहुंचते। सीकर में रहनेवाले कवियों की ओर संकेत है कि तुम सब राज सभा में रहते हो परन्तु ऐसे कामों को नहीं कर सके।

सोरठा ।

नान्हा मिनख नजीक, उमरावाँ आदर नहीं ।
ठाकर जिणनै ठीक, रणमें पड़सी राजिया ! ॥३९॥
उणही ठाम अजोग, भाजणरी मनमैं भणै ।
आ तो बात अजोग, राम न भावै राजिया! ॥४०॥
सार तथा अणसार, थेटू गळ बँधियो थको ।
रजवट हन्दो भार, राळ्याँ सरै न राजिया! ॥४१॥
कनवज दिलीश काज, वै साँवत पखरे तबै ।
रुळग्या देख्या राज, रवताण्यां वश राजिया!॥४२॥

"राजिया" ।

घरकारज सीलावणा, पर कारज समरत्थ ।
जांनै राखै साइयाँ, आडा दे दे हत्थ ॥ ४३ ॥
"नानक" नन्हे हो रहो, जैसी नन्ही दूबँ ।
बड़ी घास जल जायगी, दूब रहैगी खूब ॥ ४४ ॥
"कबीर" वोही पीर है, जो जानै पर-पीर ।
जो पर पीर न जानही, वो काफर बेपीर ॥ ४५ ॥

सवैया ।

एक अनेकनतैं जु लरैं,
झटकानहुतै बटका करवाहैं ।

मेर कों फेर उठाय धरैं,
कर शेरकों जेर अथाहकों थाहैं ।
ऐसे घने नरनाह बली,
विकरालसे कालकों ख्याल खिला हैं ।
"नाथ" कोऊ बिरलो जगमैं,
यह देह जिते नित नेह निबाहैं ॥ ४६ ॥

लम्पट चौर लबार महा शठ,
नारिदलालनकी मति साजी ।
दुष्ट लुचे बहु बंड निलज्ज वै,
स्वारथ काज बने रहैं पाजी ।
आन परैं जिनमैं इतने गुण,
रोजी लगै तिनकी अतिताजी ।
ये गुण एक नहीं हमपै,
अबका विध कीजिये ठाकुर राजी ॥ ४७ ॥

कवित्त ।

चातुरी चलावन कों चेरी के चतुरभुज,
परम उदार दण्ड लाखन भरेबे कों ।
कुलटा के करण कलाँवँत के कल्पतरु,
दाम बहु देत रहैं आसव के पैबेकों ।

दारातैं अप्रीति परदारातैं परम प्रीति,
बलीसे भये जे बहुरूप्यनके लैबेकों ।
हाल सरदारन के तंगी दोय बातनकी,
ईश्वर निमित्त औ कवीश्वर के दैबे कों ॥४८॥

"मुक्तक"

रोगको भवन त्यों कुजोग आगमन जानो,
दयाको दमन औ गमन गरवाई को ।
विद्याको विनासकारी तितिच्छा[1] को त्रासकारी,
हीमत को ह्रासकारी भीरी भरवाई को ।
"ऊमर" विचारि सिख पाप ऋषि आपन मैं,
विषै विष व्यापन में पौन पुरवाई को ।
भाई भगतनिको कसाई निज कामिनीको,
शत्रु सुखदायी सुरा हेतु हरुवाई को ॥४९॥

"ऊमरदानजी"।

सवैया।

लौन कपूर गिनै इक भाय,
गुनी अगुनी की परै नहिं जाहर ।

---

(१) (तितिच्छा) क्षमा ।

साह रु चोर सबै इकसे,
कुलहीन कुलीन अजा अरु नाहर ।
साँचरु झूँठ बरब्बर हैं,
जहँ ज्ञान विज्ञानको ठीक न ठाहर ।
कौन पै जाय पुकार करैं,
हमरे दरबार न बंब न बाहर ॥ ५० ॥

"मुक्तक" ।

उनमत्त मतंग लताद्रुम तोरैं,
निसंक व्है दौरहिँ स्यार ससा ।
बिनु चिन्तहु चीत चारित्र करैं रु,
बघेरे बडप्पन लाय नसा ।
मृग व्है गतिमन्द तहाँ बिहरैं,
मिलि खोदत सूकरवृन्द रसा ।
वनराज विहीन बड़े वनकीजु,
भई कछु और की और दसा ॥ ५१ ॥

"कविराजा भारतदानजी,,।

छप्पय ।

धिक मंगन विन गुणहिँ,
गुण सु धिक सुनत न रिज्झहिँ ।
रीझ सुधिक विन मोज,

मोज धिक देत सुखिज्जहिँ ।
देबो धिक बिन सांच,
सांच धिक धर्म न भावै ।
धर्म सु धिक बिन दया,
दया धिक अरिकहँ आवै ।
अरि धिक चित्त न सालहीं,
चित धिक जहँ न उदारमति ।
मति धिक केशव ज्ञान विनु,
ज्ञान सुधिक विनु हरि भगति ॥ ५२ ॥

महाकवि केशवदासजी "कविप्रिया" ।

ऐतिहासिक ।

संयमराय ।

दोहा ।

गीधन कों पल भख दिये, नृपके नैंन बचाय ।
सैंदेही वैकुण्ठ में, गयेजु "संयमराय" ॥ १ ॥

प्रसिद्ध कविवर चन्दकृत "पृथ्वीराज-रासा," के मोहब्बा खण्ड में लिखा है कि जब संवत् १२०० के लगभग महाराज

[पृष्ठ ८० की संख्या ५२ के पीछे इस को पढ़ना चाहिये।]

सवैया।

पण्डित पूत सपूत सुधी पतनी पति प्रेम परायण भारी। जानैं सबैं गुण मानैं सबैं जन दान विधान दया उर धारी॥ केशव रोग नहीं सों वियोग संयोग सु भोगन सो सुखकारी। सांच कहैं जग मांह लहैं यस मुक्ति यहैं चहुं। वेद विचारी॥ ५३॥

कवि प्रिया।

वाहन कुचाली, चोर चाकर, चपलचित्त मित्र,
मतिहीन सूम स्वामी उर आनियै।
पर घर भोजन, कुपुरन वास,
केसवदास वरषाप्रवास दुख दानीयै॥
पापिन के अंग संग, अंगना अनंगवस,
अपयसयुत सुत चित्त हित हांनीयै।
मूढ़ता, मुढ़ाई, व्याधि, दारिद, झुठाई, आधि,
यही नरक नरलोकनि वखानियै॥ ५४॥

कवि प्रिया।

जो जेसलमेर से ५ कोस पर है।

प्रसिद्ध कविवर चन्दकृत "पृथ्वीराज-रासा,, के महोबा खण्ड में लिखा है कि जब संवत् १२०० के लगभग महाराज

पृथ्वीराजजी ने मोहम्बापर चढाई की और घोर संग्राम हुआ तब वहां स्वयं महाराज पृथ्वीराजजी भी मूर्छित हुए, उस समय गीधों ने आकर उन के नेत्रों को नाश करना चाहा। यह देख वीरशिरोमणि "संयमराय जी," जो कि घाओं से व्याकुल हुए पड़े थे और उन की उठने की शक्ति नहीं रही थी, और तो कुछ नहीं कर सके परन्तु उन्होंने अपना पल अर्थात् मांस काट२ कर उक्त महाराज के नेत्रों पर फैंका और गीध उसे खाने लगे। तब तक महाराज को चेत हुआ और उन के नेत्र बच गये। धन्य है वीरवर "संयमराय जी," को जिन्होंने स्वामि-भक्ति के आवेश से ऐसी असीम सहानुभूति की। उक्त दोहा इसही भाव का है। सुना है कि "संयमरायजी," राठौड़ थे।

रावल भोजदेव जी।

तोड़ाँ घड़ तुरकाणरी, मोड़ाँ खान मजेज।
दाखै अनमी "भोजेद", जादम करै न जेज॥२॥

सम्वत् १२०४ में जब रावल भोजदेवजी "लुद्रवा,"[1] की गद्दी बैठे उस समय इन के पिता "लांजा विजयराजजी," के ज्येष्ठ भाई जैसलदेवजी ने वहां की गद्दी लेना चाहा परन्तु राजकीय लोगों को प्राय: "भोजदेव जी," के अनुकूल देख

१ जैसलमेर राज्य की प्राचीन राजधानी "लुद्रवा," थी जो जेसलमेर से ५ कोस पर है।

कर वे अपने दोसौ २०० सवारों के साथ प्रसिद्ध बादशाह "शहाबुद्दीन„ से सहायता लेने को उस की राजधानी "गोर„ को चले गये। उक्त बादशाह उन दिनों आन्हलवाड़ा पाटनपर चढ़ाई करने के विचार में था, इन्होंने जाकर कहा कि आप हमारे साथ होकर पाटन से लडैंगे तो वहां से आते समय "लुद्रवा„ का राज्य भी आप को मिल जायगा। निदान शहाबुद्दीन ने अपने सेनापति मजेजखां को और जैसलदेवजी को पाटन पर भेजा। इधर भोजदेवजी ने यह समाचार सुने और विचार किया कि मुसलमानों की सेना अवश्य ही यहां आवेगी इस लिये उस को पहले ही रोकना उचित है। यह निश्चय करके भोज देवजी ने जैसलदेवजी को यह उक्त दोहा लिख भेजा कि यवनों की सेना को नाश करके मजेजखां को हटावैंगे. पश्चात् जब उक्त सेना लुद्रवे पर आई तो मजेजखां के बारह हजार मनुष्यों को मार कर पांच हजार साथियों सहित स्वयं भोज देवजी भी काम आये। इन की वीरता प्रशंसनीय है।

पाबूजी राठौड़।

गीत।

प्रथम नेह भीनो महाक्रोध भीनो पछै,
लाभ चमरी समर झोक लागै।
राय कँवरी बरी जेण बागै रसिक,
बरी घड़ कँवारी तेण बागै॥ १॥

हुवे मङ्गळ धमळ दमंगळ वीर,
हकरंग तूठो कमध जंग रूठो ।
सघण बूठो कुसुम वोह जिण मोड़ सिर,
त्रिषम उण मोड़ सिर लोह बूठो ॥ २ ॥

करण अखियात चढियो भलां काळमी,
निवाहण वयण भुज बांधियाँ नेत ।
पँवाराँ सदन वरमाळ सूँ पूजियो,
खळाँ किरमाळ सूँ पूजियो खेत ॥ ३ ॥

सूर बाहर चढे चारणां सुरहरी,
इतै जस जितै गिरनार आवू ।
विहँड खळ खींचियाँ तणा दळ विभाड़,
पोढियो सेज रण भोम "पावू" ॥४॥ ३ ॥

बारहठ कविराज बांकीदासजी ।

गीत ।

नेह निज रीझरी बात चित ना धरी,
प्रेम गवरी तणो नाहिं पायो ।
राजकँवरी जिका चढी चँवरी रही,
आप भवँरीतणी पीठ आयो ॥४॥

---

१ विस्तार भय से यह गीत पूरा नहीं लिखा क्यों कि इस एक दोहे में और विशेष कर इस की अन्तिम झड़ में मुख्य तात्पर्य आगया है ।

अनुमान से संवत् १३६० विक्रमी के आस पास राजपूताने में एक "पावूजी" नामक राठोड़ क्षत्रिय बड़े वीर हुए हैं जो अत्यन्त धार्मिक और सदाचारशील थे। इन के गुणों की प्रशंसा राजपूताने में बहुत फैली हुई है और वे इस समय देवता करके माने और पूजे जाते हैं। "पावूजी" मारवाड़ के "कोळू" नामक ग्राम के निवासी थे। उन ही के समय में नागोर के पास "जायळ" नामक ग्राम में खीची जाति के क्षत्रिय "जिनराज" का राज्य था। वहां एक "देवळजी" नामक चारणी निवास करती थीं जो देवी का अवतार थीं। "देवलजी" के पास "काळिमी" नामक घोड़ी बड़ी अच्छी थी जो देवतांशसंभूत होने के कारण अनेक विशेष गुणों से संपन्न थी। "जिनराज" खीची ने "देवळजी" से "काळिमी" घोड़ी मांगी परन्तु "देवळजी" ने इनकार कर दिया इस से दुष्ट "जिनराज" उन से शत्रुता रखने लग गया और उनका गो आदि धन हरण करके नाना प्रकार से कष्ट देने की चेष्टा करने लगा इस से "देवलजी" अपना धन, वित्त लेकर "पावूजी" के निकटस्थ स्थान में चले गये। "काळिमी" घोड़ी की प्रशंसा सुन के "पावूजी" ने मांगी तब "देवलजी" ने कहा कि मेरे गो आदि धन की रक्षा के निमित्त जो वीर क्षत्रिय अपना शिर देने के लिए तय्यार हो उसी को यह दी जासक्ती है। "पावूजी" ने यह बात स्वीकार की इस से "देवळजी" ने उक्त घोड़ी देदी।

यह बात सुन के " जिनराज ,, खीची और भी आग बगूला होगया और " देवलजी,, की गायें हरण कर लेजाने की चिन्ता में रहने लगा परन्तु " पावूजी ,, के प्रताप से उस का कुछ वश नहीं चल सक्ता था। " पावूजी ,, के गुणों की प्रशंसा दूर २ तक फैली हुई थी उस को सुन कर " सिन्ध ,, देश के " उमरकोट ,, के सोढा क्षत्रियों की राजकन्या ने " पावूजी ,, को वरने का दृढ निश्चय किया उस के अनुसार कन्या के पिता ने " पावूजी,, के पास सगाई करने का संदेशा भेजा। दृढ़प्रतिज्ञ " पावूजी ,, ने कहा कि मैं अपना शिर "देवलजी ,, को देचुका हूं, न जाने मैं किस समय काम आजाऊं मेरे साथ विवाह करने से क्या लाभ है ? पीछे जाकर सोढों के मनुष्यों ने अपने स्वामी से यह बात कही और राज-कन्या के कानों में यह बात पहुंची तो उसने कहा कि " मैं केवल इतना ही चाहती हूं कि " पावूजी" की पत्नी कहलाऊं और कोई अभिलाषा नहीं है,, । अन्त में विवाह स्थिर हुआ और "पावूजी" "उमर कोट,, को विवाहार्थ प्रस्थान करते समय "देवल जी,, से आज्ञा लेने आए। "देवलजी,, ने जाने की आज्ञा दी उस समय यह कहा कि "यदि पीछे से "जिनराज,, हमारी गौओं को घेरेगा तो तुम को यह " काळिमी " घोड़ी खबर देगी उस समय तुम क्षणमात्र का विलम्ब किए विना अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चले आना,, । " पावूजी,, "जो आज्ञा,, कहके विदा होगए। पापी " जिनराज ,, ने अवसर देख कर

तनिक भी विलम्ब न किया और "देवलजी„ की सब गाएं घेर कर लेचला। "देवलजी„ ने अपनी दैवी शक्ति से "पाबूजी" जी का स्मरण किया उसी क्षण "काळिमी„ घोड़ी हिनहिनाने और नाचने कूदने लगी। "उमरकोट„ में उस समय विवाह-कार्य होरहाथा, "पाबूजी„ पाणिग्रहण करके भांवरी (फेरे) ले रहे थे। "काळिमी„ घोड़ी की आवाज सुनते ही उन्हों ने कहा कि "बस मुझे संदेशा आगया अब मैं नहीं ठहर सक्ता„ यह कहके "पाबूजी„ भांवरियों का कार्य पूर्ण किए विना ही राजकन्या का हाथ और चंवरी छोड़ कर भंवरी अर्थात् काले रंग की घोड़ी पर कि जो चलने के लिये ताकीद कर रही थी सवार होकर चल दिए और खीचियों से जा भिड़े। बड़ी वीरता के साथ "देवलजी„ का वित्त पीछा ले आए और एक बछड़ा नहीं आया था उस के लिए दुवारा गए उस समय बड़ी वीरता से काम आए और उन्होंने इस क्षणभङ्गुर शरीर को छोड़ कर चिरस्थायी यशोरूप शरीर प्राप्त किया। सोढी राजकुमारी ने कि जिस का पाणिग्रहणमात्र हुवा था सती होकर अपना धर्म निवाहा। "पाबूजी" जैसे सत्यसन्ध और वीर पुत्रों की जनयित्री ही जननी कहाती है। "पाबूजी„ जैसे निजधर्म निभानेवाले दृढप्रतिज्ञ क्षत्रिय और "सोढीजी„ जैसी क्षत्रिया का होना इस संसार में बड़ा कठिन है। यह पवित्र भारत भूमि धन्य है जहां "पाबूजी„ जैसे क्षत्रिय और "सोढीजी„ जैसी क्षत्रिया जन्म लेती हैं।

गोगादेजी के घोड़े ।

भूखा तिसिया थाकड़ा, राखीजे नेड़ाह ।
ढळिया हाथन आवसी "गोगादे!,, घोड़ाह॥५॥

अनुमान संवत् १४०० में गोगादेजी का और "जोइया,, जातिके यवनों का झगड़ा हुआ था । गोगादेजी बहुत दूर से आये थे इस कारण उनके घोड़े भूखे थे और थक गये थे । गोगादेजी ने एक तालावपर विश्राम किया और घोड़ों को जंगळमें छोड़ दिया और वे भी चातुर्मास्य का हरा २ घास चरते २ कुछ दूर जा निकले । इसही अवसर में गोगादेजी को जोइयों ने आदवाया उन्होंने घोड़ों को वुळाने को बहुत हो हो की परन्तु अश्वों का आना असम्भव था । " गोगादेजी,, वहां ही जोइयों के हाथ काम आये । क्षत्रियों को चाहिये कि अपने घोड़ों को ढीले न छोड़ें ।

राव कांधलजी ।

कमधज राज भतीज को, सज बांधे बळ सार ।
जिण "कांन्हल,, भांजेजबर, चौदह भूमीचार॥६॥

वीरशिरोमणि "कान्हलजी,, जोधपुर महाराज "जोधाजी,, के छोटे भाई थे । इन का अपने भतीजे राजकुमार "वीकाजी,, पर बहुत स्नेह था । एक दिन "कान्हलजी,, "वीकाजी,, का हाथ पकडे और उन को स्नेह भरी दृष्टि से देखते हुए महा-

राज जोधाजी के पास आ रहे थे । उन की यह प्रेम मुद्रा देख महाराज "जोधाजी„ ने हास्य विनोद में "कान्हलजी„ से कहा कि "आजतो भतीजे का ऐसे हाथ पकड़ा है मानो कहीं का राज्य दिलावैंगे„ यह सुन सम्वत् १५२७ में वीर कान्हळजी जोधपुर से चले और जाटों के १४ चौदह भूमिचारों को जीतकर एक नया राज्य जमाया । संवत् १५४५ में अपने भतीजे "वीकाजी„ के नाम से "वीकानेर„ नगर बसाया और वहां का राज्य जोधाजी के कथनानुसार "वीकाजी„ को दे दिया और स्वयं उन को स्वामी मानकर साधारण वृत्ति से रहे । वीर "कान्हलजी„ की सच्ची प्रतिज्ञा और भ्रातृस्नेह,तथा निर्लोभिता प्रशंसनीय है । किञ्च वीर "कान्हल„ जैसा दूसरा दृष्टान्त राजपूताने में मिलना कठिन है ।

बच्छराज जी गौड़ ।

देतां कोडपसाव दत, धिनो गौड़ बछराज ।
गढ अजमेर सुमेर सूँ, ऊँचो दीखै आज ॥७॥

सम्वत् १५६० के लग भग अजमेर के राजा वत्सराजजी गौड़ ने "पीठवा„ नामक चारण कविको "कोडपसाव„ दान दिया था । उक्त कवि को महाराना उदाजी ने भी "कोडपसाव„ देने का विचार कियाथा परन्तु सत्य-वक्ता धर्मशील "पीठवा„ ने उन को पिता कुम्भाजी को मार कर राजा होने से अपराधी जानकर उक्त दान नहीं लिया और उक्त दोष कह कर चला

आया । उसही "पीठवा," कवि का कहा हुवा उक्त दोहा है । कवि पीठवा का साहस और धर्म, महाराणा "उदाजी," की सहनशीलता व गौड़ वत्सराजजी का औदार्य प्रशंसनीय है ॥

सांगा गौड़ ।

जंळ[1] डूबन्ती जाह, सादज सागरिये दियो ।
कहज्यो मोरी माय, कवि नैं देवै कामळी ॥८॥

सम्वत् १५८० के अनुमान राजपूताने में बारहठ "ईश्वरदासजी," एक सुयोग्य कवि और भक्त होगये हैं । वे किसी समय देशाटन करते हुए "नागरचाळ," देश में जा निकले और वहां एक ग्राम में विश्राम किया । उक्त बारहठजी का नियम था कि क्षत्रिय से अन्य का अन्न नहीं जीमना इस से उन्हों ने निश्चय कराया तो विदित हुआ के वहां एक सांगा नामक गौड क्षत्रिय रहता है । सांगा अत्यन्त ही दीन दशा में था और जैसे तैसे अपना निर्वाह करता था । इस के कुटुम्ब में केवल माता और घर में कुछ भेड थीं । सांगा उमर में चौदह पन्द्रह वर्ष का और स्वभाव में बहुत ही सरळ उत्साही और धर्म में तत्पर था । निदान बारहठजी प्रसन्न होकर उस के घर गये और सांगा की झोंपडी पर जाकर भोजन कराने को कहा । बड़े २ राजा महाराजाओं के पूज्य उक्त बारहठजी के याचना करने पर सांगा की

१– 'नदी बहंती जाय' यह पाठान्तर भी है ।

माताको अत्यन्त सन्ताप हुआ और वह अपनी हीन दशापर कुढने लगी। उत्साह-सम्पन्न "सांगा" ने अपनी माता से कहा कि जैसे तैसे करके बारहठजी को भोजन कराओ अपन कुछ विशेष कष्ट पालेंगे तो कोई चिन्ता नहीं परन्तु बारहठजी को भोजन देने से ना करना अपन क्षत्रियों का धर्म नहीं है। पुत्र की यह बात सुनकर माता प्रसन्न हुई और बड़ी कष्ट कल्पना से बारहठजी को भोजन कराया। पीछे साँगाने बड़ी नम्रता के साथ संकुचित होते २ बारहठजी से कहा कि महाराज! इस समय तो आपके भेट करने को मेरे पास कुछ है नहीं जब मेरी भेडोंकी ऊन उतरैगी तब उस का कम्बल बना कर आप के भेट करूँगा। उक्त कवि "ईश्वरदासजी" उसके इस उत्साहपूर्ण वाक्य से बहुत प्रसन्न हुए और आगे को पधारे। इधर साँगा एक दिन नदीपर भेड़ चरा रहा था अकस्मात् नदी का प्रवाह बढ़ा और वह बहने लगा उस समय उसके अविकल अन्तःकरण ने उसको बारहठजी को कम्बल देना स्मरण कराया और वह उस आकस्मिक आपत्ति के समय भी अपनी प्रतिज्ञापर दृढ रहा। सत्यसन्ध साँगाने बड़े साहस से अपने साथियों को (जो अकस्मात् साँगा की यह दशा देखकर किंकर्तव्यतामूढ हो रहे थे) पुकार कर कहा कि "तुम मेरी माता से कह देना कि कविजी को कम्बली अवश्य देदेवै" धन्य!! साँगा! धन्य, जो साँगा आध घड़ी पहले एक छोटे रेवड़को चराने वाला गुवाल था, एक दीन माता का

पुत्र था, दरिद्री होने से अभिमानी लोग जिस को घृणा दृष्टि से देखते थे, सज्जन जन जिस उत्साही और सदाचार सम्पन्न सांगा की ऐसी हीन दशा देखकर सन्तप्त होते थे अब उसही साँगा ने वह उच्च पद पालिया है जो बलि, विक्रम, कर्ण, दधीचि आदि प्रसिद्ध दानवीरों के और महाराज "शिबि," हरिश्चन्द्रादि धर्म वीरों के पद से भी कहीं उन्नत है। वीर साँगा की उक्त दशा होने पर उस की वृद्धा माता का जीवन निरवलम्ब होगया। तथापि अपने पुत्रकी प्रतिज्ञाका ध्यान रख कर उसने बड़े कष्टसे कुछ कालतक अपने प्राणोंको रक्खा। फिर वेही बारहठ ईश्वरदासजी उस ग्राम में आये और साँगा की कुटी पर पहुंचे तो सांगा की माता ने उन को भोजन परोस दिया और जीमने की प्रार्थना की। बारहठजी ने सांगा के लिये पूछा तो कहा वह यहां ही कहीं गया है। उन्होंने बहुत आग्रह किया तो बुढियाने रुदन करते २ सांगा का नदी में बहना उनसे कहा। सुना जाता है कि बारहठजी ने उसी नदी पर जाकर उच्चस्वर से सांगा को बुलाया तो वह ज्यों का त्यों बहताहुआ चला आया, अस्तु। सांगाका यह यश यावच्चन्द्रिवाकर जागरूक रहैगा। हमको साँगा के इस वृतान्त से बहुत सन्तोष होता है और अभिमान होता है कि उक्त "सांगा," गौड राजपूत एक अमूल्य पुरुष होगया।

राणी भटियाणी जी।

माण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दोय दोय गयँद न बंधही, एकै खम्भू ठाण॥१॥

अनुमान संवत् १६१५ में जोधपुर महाराज मालदेवजी विवाहार्थ जेसलमेर पधारे थे वहां विवाह में ही भटियाणीजी ने महाराज के किसी अनुचित कार्य से प्रतिज्ञा करली कि मैं अपने पति से सम्भाषण नहीं करूंगी अस्तु उस समय तो उक्त महाराज आगये और पीछे बारहठ आसेजी को भटियाणीजी को लाने के लिये जेसलमेर भेजा। चतुर बारहठजी कई प्रकार से समझा कर भटियाणी जी को जोधपुर ले आये परन्तु किसी कारण से उन्होंने फिर हठ किया तब बारहठजी ने सुना दिया कि "आप यदि मान रखती हैं तो पति को छोड़दें और पति रक्खें तो मान को त्यागदें। एक स्तम्भ वाले ठाण में दो गजेन्द्र नहीं बँध सक्ते हैं" यह सुन भटियाणी जी अपने हठ पर दृढ आरुढ हो गये और यावज्जीव महाराज से सम्बन्ध नहीं रक्खा परन्तु पति के स्वर्ग सिधारने पर अवश्य ही साथ हो लिये अर्थात् सतीहुए। बारहठजी का स्पष्ट कहना प्रशंसनीय है।

महाराज रायसिंहजी।

आजूणो दीसै इसो, रायाँसिंह नरेश।
वपुतो सुवरण ढाँकियो, सिर पागड़ी न केश॥१०॥

राजपूतानेमें पृथ्वीराजजी एक अद्वितीय वीर धार्मिक और देशहितैषी हुए हैं इन को क्षत्रियवंश के अवतंस (मुकुट)

मानना चाहिये । ये क्षत्रियवीर बीकानेर महाराज रायसिंहजी के छोटे भ्राता थे । बादशाह अकबर का और महाराज रायसिंह जी का एक दिन में जेसलमेर में विवाह हुआ था । उक्त महाराज को अकबर के साथ विवाह होने का घमण्ड हुआ तब वह अनुचित अभिमान देख कर पृथ्वी राज जी ने यह दोहा कह दिया संवत् १६२८ से ६८ तक के मध्यका यह वृत्तान्त है । पृथ्वीराजजी एक सच्चे और स्पष्टवक्ता थे । इन्हों ने अपने पिता "कल्यानसिंहजी„ का स्वर्ग वास होने पर भी एक गीत कहा था, वह नीचे लिखा गया है ये वीर होने के अतिरिक्त विद्वान भी अद्वितीय थे । धर्म के पक्षपाती थे जब महाराना प्रतापसिंहजी का कष्ट इन्हों ने सुनातो कई दोहे उत्साहवर्धनार्थ लिख कर भेजे जो हमारे छपाये "महाराणा जस प्रकाश" में लिखे गये हैं इन्होंने कई काव्य भी बनाये हैं ।

गीत ।

सुख रास रमन्ता पास सहेली,
दास खवास मोकळा दाम ।
न लिया नाम पखै नारायण,
"कालिया"उठ चलिया वे काम ॥ १ ॥
माया पास रही मुळकन्ती,
सजि सुँदरी कीधाँ सिणगार ।

वहु परिवार कुटम चौबाधो,
हरि बिण गयो जमारो हार ॥ २ ॥

हास हसंता रह्या धोळहर,
सुख में रासत ज्यों संसार।
लाखां धणी प्रयाणै लांबै,
जाताँ नह भेजिया जुहार ॥ ३ ॥

भाई बंध कुडूँबो भेळो,
पिंड न राखो हेक पुळ।
चापरि करै अङ्ग सिर चाढो,
काढो काढो कहै कुळ ॥ ४ ॥

असिया पगृग रह्या आफ़ळता,
मदभर खळ हळ ता मैं मंत।
बहलो धणी सिंगासण वाळो,
पाळो होय हालियो पंथ ॥ ५ ॥

देहळी लग महली पिण दौडी,
फळसालग मा बहण फिरी।
मड हट लागो कुटुँब चोमेळो,
किणियन सुख दुख बात करी ॥ ६ ॥

कोमळ अङ्ग न सहतो कळियाँ,
ताती झळियाँ सहै तप ।
घड़ी घड़ी कर तड़ी ध्रीवियो,
बड़ी बड़ी बाळियो बप ॥ ७ ॥

केसर चनण चरचतो काया,
भणहण ता ऊपर भमर ।
रजियो राखत णै पूगर णै,
घणां मुसाणा बीच घर ॥८॥

खाटी सो दाटी घर खोदे,
साथ न चाली हेक सिळी ।
पवनज जाय पवन बिच पैठो,
माँटी माँटी माहिं मिळी ॥९॥ ११॥

गीत "कल्यानसिंहजी" "राथमलोत" का

बळ चढ बोलियो पतसाह बदीतो,
मंडोवर रुख माण मदीतो ।
जो जमवार लगे जस जीतो,
कलो भलो रजपूत कहीतो ॥ १ ॥

पुळिया दळ पाधर पतसाही,
सिध नरियण सूँ बीड़ो साही ।

चकिया बैण तिका निरवाही,
गढ सुमियाण कला गिडगाही ॥ २ ॥
थट गागरण तळैटी थाणों,
राव अग्राज करै रीसाणों।
करडा वचन कहे कलियाणों,
सिर पड़ियाँ पलटै सुमियाणों ॥ ३ ॥
तूटि छमंछर बरस तियाळै,
वेढै पड्यो धर खेध त्रिचाळै।
ऊदो राव दुरँग रुद्राळै,
रायमलोत दुरंग रुखाळै ॥ ४ ॥
सूजाहरा डांखियां साबळ,
चाव बढे अणखला नह चळ।
दीठा काळ रहावे अरिदळ,
चढ़िया गढाँ जूझवा चळ चळ ॥ ५ ॥
"भारथसीह" जिसा भूपाळाँ,
माचि कळह गढ ऊपर माळाँ।
तूं कहतो आवे रवताळाँ,
कलियो जूझ मुओ किरमाळाँ ॥ ६ ॥
जिम रावळ दूदो जैसांणैं,
सातलसोम मुवा सुमियाणैं।

पाटणि अरजन जेम प्रमाणैं,
　　कीधो मरण तिसो कजियाणैं ॥ ७ ॥
जुड़ि घड़ कान्ह मुवो जाळंधर,
　　थाट विडार हमो रणथम्भर ।
अँगते लाज अणखला ऊपर,
　　कलियो जूझ मुवो गज केहर ॥ ८ ॥
पावागढ जूझार पताई,
　　सजि जैमल चीतोड़ सवाई ।
लाख भड़ां सिर मांडि लड़ाई,
　　वाघहरो रहियो बरदाई ॥ ६ ॥
हाथी सिंघहर भाण हठाळो,
　　आबू सदन मुवो अड़साळो ।
कूंभ गागरण माँझी काळो,
　　समिये तेम कलो सु पखाळो ॥ १० ॥
अचळ तिलोकसींघ रण आगे,
　　जुड़ि गागरण मुवा छळ जागे ।
लाजत के भड अम्बर लागे,
　　खेड नरेस बाजियो खागे ॥ ११ ॥
छळ जूनैगढ भीम छछोहे,
　　"लुद्रवै" भीम मुवो चढि लोहे ।

रहियो भाण मँडोवर रोहे,
सिर सुमियाण कलो मृत सोहे ॥१२॥
बिढि घायल भोज मुवो वीकाणैं,
नह से राव चूँडो नागाणैं ।
बरसल पर खेमाळ वखाणैं,
की धो मरण जिसो कलियाणैं ॥१३॥
नहचळ बात कलै निरबावे,
चावा रावाँ बोल चढ़ावे ।
रवि ससि हर लग नाम कहावे,
अमर सभा बिच बैठो आवे ॥१४॥१२॥

पृथ्वीराजजी ।

कुँवर रायचन्दजी ।

रावत "रायांचन्द,, रै, आप तिसै उणियार ।
जाणकनग्ग वखेरिया, कर भरि राजकुमार ॥१३॥

अनुमान संवत् १६४० में " राव मनोहरजी „ के पुत्र वीरवर "रायचन्दजी,, ने बादशाह जहांगीर की आज्ञा से बंगस देश पर जाकर अफगानों से झगड़ा किया था । उस झगड़े में अपने समान बहुत से शूर वीरों को मारा, उस ही वृत्त का यह दोहा है । इन के और भी कई दोहे हैं । इन के पिता राव मनोहरजी ने पुत्र का न रहना सुन कर आत्मघात किया था ।

रावजी अमरसिंहजी।

उन मुखतैं "गग्गो" कह्यो, उन कर लई कटार।
"वार" कहन पायो नहीं, जम घर होगई पार ॥१४॥

संवत् १७०० का वृत्तान्त है कि नागोर के महाराव अमरसिंहजी आगरे के किले में शाही दर्बार में जा रहे थे। किले ही में जाते २ बखशी "सलावतखां,, मिला और उस से इन का कुछ विवाद हो गया। बख्शीने इन को गंवार कहना चाहा था उसने "ग,, ही तो कहा और "वार" कहते २ तो उक्त महाराव ने कटार से उसको मारडाला। सोही इस दोहे में कहा है।

वलूजी चांपावत।

वलू कहै गोपालरो, सतियाँ हाथ सँदेश।
पतसाही घड मोडकर, आवाँ छाँ अमरेश ॥१५॥

"वलूजी,, राजपूताने में एक तेजस्वी वीर होगये हैं यद्यपि इन के पिता "गोपाळदास जी" के ८ पुत्र थे और वे आठोंही बड़े शूरवीर हुए और जहां तहां युद्धों में काम आए परन्तु वीर "वलूजी,, उन सब से बढ कर हुए हैं (गोपालदासजी के कोन २ पुत्र किस २ युद्ध में काम आये इस के जानने को एक छप्पय नीचे लिखा जायगा) ये वीर-शिरोमणि महाराव

अमरसिंहजी के अत्यन्त कृपापात्र थे और उन्ही की सेवा में नागोर रहते थे। उक्त महाराव साहब को मैंढे रखने का दुर्व्यसन था। जब उन के मैंढे अरण्य में चरने जाते तो बारी २ से ताज़ीमी सर्दारों तक को उन की रक्षार्थ जाना पड़ता। जब "बलूजी,, की बारी आई तो इन्हों ने कहा कि "हमारा यह काम नहीं है,, यह सुन अमरसिंहजी ने कटाक्ष किया कि "बलूजी,, तो बादशाही सेना को नाश करैंगे अर्थात् पतशाही घड़ मोड़ैंगे। ये मैंढे चराने क्यों जायं महाराज का यह वाक्य सुन वीरशिरोमणि बलूजी वहां से चल पड़े और कुछ दिन बीकानेर और उदयपुर रह कर अन्त में बादशाही सेना में जा रहे जहां संमान पूर्वक रक्खे गये। जब महाराव अमरसिंहजी का "अर्जुनजी,, गौड़ के हाथ से शरीर गिरा उस समय बादशाह ने उनके शवकी दुर्दशा करने की आज्ञा दी। उधर उक्त महाराव साहब की महारानी सती होने को उद्यत हुई परन्तु मस्तक विना सती होना बन नहीं सकता था। यह बृतान्त महाराव अमरसिंहजी के प्रधान भाऊजी कूंपावत ने वीर "बलूजी,, से कहा। यह सुन वीर "बलूजी,, तत्काल बादशाही सेना से युद्ध करने को प्रस्तुत हुए। और अपने धन व जीवन का कुछ भी विचार नहीं किया। वीर बलूजी बड़ी वीरतासे बादशाही सेनाको नाशकर के महाराव अमरसिंहजी का शव किले में से निकाल लाये और उक्त महाराव के उस कटाक्ष वाक्य को

सबाकर वहाँ ही काम आये। धन्य है वीर "बलूजी" की माता को जिस ने ऐसे वीर रत्न उत्पन्न किये। क्या अबभी कभी ऐसे सच्चे वीर वसुन्धरा पर प्रकट होंगे।

जब वीर "बलूजी" अमरसिंहजी का शव लाने को गये। उस से कुछ दिनों पहले उदयपुर के महाराणा साहब ने एक अश्व खरीदाथा और उस के योग्य सवार का विचार होने पर उन्होंने वह अश्व इनके योग्य जानकर भेजा था। अश्व ठीक उस ही समय बलूजी के पास पहुंचा था जिस समय ये शव लान को अपने थोड़ेसे सवारों के साथ जाने लगे। फिर बलूजी उस ही घोड़ेपर चढकर उक्त युद्ध में गये थे। जब वह घोड़ा आया उस समय उन्होंने महारानाजी को अरज कराई थी की मैं इस अश्वका वदला आप को कभी दैवारी में लड़ाई होगी तो दूंगा। सुना जाता है कि इस प्रतिज्ञा के अनुसार वे स्वर्ग-गत होने परभी जब दैवारी पर युद्ध हुआ तो उसही अश्वपर सवार होकर आये और सबके देखते २ यवन सेनाका नाश किया। उस ही समय का एक गीत नीचे लिखा जाता है जो कि उनकी सच्ची प्रशंसा में किसी कविने कहा है—

गीत।

अह आगम वचन जसाहर राखै,
पहु जाणी धू मेरु प्रमाण।

मौनै अस रीझै मोकळियो,
देस्यूं तस बदलो दीवाण ॥ १ ॥

जग पर वचन कहै जोधपरो,
पिता वचन नह खता परेह ।
दहबारी काकळ व्है तिण दिन,
भाड़ो अस चो लीध भरेह ॥ २॥

अभणै गोपालोत इसी पर,
जाणि उदैगिर दीत जहीं ।
आहाड़ा तस असचो अदलो,
नरिंद बळू चूकसी नहीं ॥ ३ ॥

"अमर,, सुछळ गजगाह आगरै,
रण चढि घणां मारस्यूँ रोद ।
चढिये दळ घाटी चीतोड़ा,
साकुर भरलीजे सीसोद ॥ ४ ॥

भिड़ खुरसाण राणदळ भागा,
समहर असुर साझतां सार ।
उभै दळांहि निजर तद आयो,
अस नीलो कमधज्ज असवार ॥ ५ ॥

घाट कुघाट अहाड़ा घटताँ,
झाट खगाँ रण थाट झलू।
नरपुरतणो वचन निरवाहे,
वसियाँ सुरपुर पछै बलू॥ ६ ॥ १६ ॥

वीरवर बलूजी के ६ भ्राताओं के वृतान्त का सूचक छप्पय। धन्य है गोपालदासजी को जिन के अमोघ वीर्य से ८ पुत्र हुए और वे सबही बड़े वीर हुए।

गोपाल दासजी के पुत्र।

गीत।

मांडव 'राघवदास,, पिता जुध जामल पैठो।
"हाथी" जङ्गळ हेत सेल बाहणूँ सहेठो।
"हरियो" बागड़ खेत साथ सबळाँ दळ भंजे।
"खेतसिंह" अजमेर दळाँ ऊथल रण गंजे।
आगरे "बलू" "भोपत"
"दिली" "वीठल" उज्जीणी वरा।
कुळ माहिं बड़ा साका किया,
रण सामत "गोपाल" रा॥ १७॥

सुलतानजी गौड़ ।

मन चाह्यो पायो मरण,
हुई फतेपुर हल्ल ।
रहसीरै "सुलतानियां" (थारी)
गौड! घणां दिन गल्ल ॥ १८ ॥

"फतहपुर,, शेखावाटी में एक "सुलतानजी,, नामक गौड राजपूत रहते थे। उन को आखेट का दुर्व्यसन बहुत था मार्ग में एक बारहठजी का स्थान था इसलिये जब सुलतानजी आखेट करके आते तो वे बारहठजी उन को बहुत उपालम्भ देते। किसी समय सुलतानजी ने बारहठजी से कहा कि यह दुर्व्यसन मुझ से नहीं छूटैगा आप कोई ऐसा उपाय बताइये कि जिस से मेरी सद्गति हो। बारहठजी ने उत्तर दिया धर्मयुद्ध में आनन्दपूर्वक मरने से तुह्मारा मनोरथ सिद्ध होगा। फिर संवत् १७०० के अनुमान अकस्मात ही उत्तर की ओर से "पचाधों,, का कटक फतहपुर पर चढ आया तब उक्त सुलतानजी सानन्द रण के लिये सज्ज (तय्यार) होकर उन्हीं बारहठजी के पास गये तो उन्हों ने उस समय यह उक्त दोहा कहा।

मिर्जा राजा जयसिंहजी।

घण्ट न वाजै देहराँ, शङ्क न मानैं शाह ।
एकणहाँ फिर आवस्यो, माहूरा जयसाह ॥१९॥

संवत् १७२४ में जयपुर राज्यकी प्राचीन राजधानी "आमेर" के महाराज मिरजा राजा जयसिंहजी बादशाह औरङ्गजेब की फोज लेकर दक्षिण में "शिवराज" के साम्हने गये थे और उन्हों ने अपने बल और नीति से विजय पाई और दक्षिण देश में इन की जयध्वजा फहराने लगी। उस समय दुष्ट औरङ्गजेब ने इन पर कई मिथ्या सन्देह करके इनको विषद्वारा मरवा दिया और गुप्त रूप से उन के न रहने का हाल सुन कर मन्दिर तोड़ने की आज्ञा दी। (उक्त महाराज और जोधपुर नरेश जसवन्त सिंहजी की एकता और वीरता से बादशाह पर इन का बड़ा आतङ्क रहता था और वह मन माना नहीं कर सक्ता था) यह समाचार सुन कर जोधपुरपति जसवन्तसिंहजी ने जयसिंहजी का जीवित न होना समझ कर यह दोहा कहा। धन्य है महाराजा जसवन्तसिंहजी का अनुमान और धन्य है महाराज जयसिंहजी को जिन का यश इस प्रकार स्मरण किया जाता है।

ठाकुर सुजाणसिंहजी।

झिरमिर २ मेवा बरसै, मोरां छतरी छाई।
कुळ मैं छैतो आव सुजाणा, फोज देवरै आई॥२०॥

संवत् १७२५ में जब बादशाह आलमगीर की आज्ञा से मन्दिर तोड़े जाते थे उस समय खंडेले का मन्दिर तोड़ने को

शाही फौज आई । उस समय वहां के राजा बहादुरसिंहजी तो डर कर स्थानान्तर में चले गये और ये ठाकुर सुजानसिंहजी (जो कि "छापोली,, के भोजाणी साख में खंडेले के भाइ बन्धुओं में थे और हिन्दू धर्म पर पूर्ण आरूढ थे) शाही फौज से लड़े और धर्म रक्षा के लिये अपने प्राण दिये । मन्दिर इनके जीते रहते नहीं टूट सका । उन्ही सुजानसिंहजी की प्रशंसा में एक गीत बहुत उत्तम है जो नीचे लिखा जाता है ।

गीत ।

नहीं आज जयसिंह जसराज जगतो नहीं,
　　दे गया पीठ सह छत्री दूजा ।
पृथी पालट हुवै पाट मिन्दर पड़ै,
　　साद मोहण करै आव सूजा ॥ १ ॥

महवसुत गजनसुत करनसुत मुकतगा,
　　रिधू अन परिहरे धरमरेखा ।
साँकड़ी बार अब राख तोसूँ रहै,
　　सरम मो परम चीविया सेखा ॥ २ ॥

मानहर मालहर अमरहर वीस मे,
　　अनपोह व ओसकेन को आया ।
असुरदळ ऊपटे आजहूँ एकलो,
　　जुड़ण कज पधारो श्याम जाया ॥३॥

सादृ सुण सेहरो बांध सिरऊससै,
परब मन वंछतो जसो पायो ।
बादृ सुरताण सूँ बांध खगवाहतो,
याद करताँ समों अगै आयो ॥ ४ ॥

पाड़ पतसाह घड़ सवाड़ा पोढियो,
देवमंडळ सरी न को दूजो ।
मार मे छाण घड़ जोत सूजो मिळे,
पथर पाड़ो तथा कोइ पूजो ॥५॥२१॥

दुर्गादासजी ।

जसवँत कहियो जोय, घर रखवाळो गूदड़ा ।
साँची कीधी सोय, आछी आसकरन्नवत ॥२२॥

मारवाड़ के प्रसिद्ध वीर शिरोमणि दुर्गादासजी का पूरा वृत्तान्त लिखने से तो विस्तार भय है परन्तु इन्होंने महाराज "जसवन्तसिंहजी" के पीछे बादशाही फोज पर व अन्यान्य स्थानों पर कई दावे किये और धावे मारे हैं और सदा मारवाड़ की रक्षा पर उद्यत रहे हैं। संवत् १७३५ में जब महाराज जसवन्तसिंहजी जमरूद में विराजते थे तब किसी दिन उक्त वीर दुर्गादासजी सो रहे थे उन पर आतप (धूप) आगया

तो स्वयं महाराज ने उन पर छाया की और मारवाड़ के सर्दारों को (जो महाराज के स्वयं छाया करने का निषेध कर रहे थे) कहा कि मैं इस पर छाया इसलिये करता हूं कि यह किसी दिन सम्पूर्ण मारवाड़ पर छाया करेगा। धन्य है महाराज का अनुमान और धन्य हैं दुर्गादासजी जिन्होंने उन के अनुमान को सच्चा किया। उक्त दोहे में यह ही वृत्तान्त कहा गया है इन ही दुर्गादासजी के पवित्र और प्रबल उद्योग से मारवाड़ पीछी आई थी इस का इतिहास बहुत ही प्रभावशाली है।

बारह मासां बीह, पाण्डवही रहिया प्रछन।
दुरगो हेको दीह, आछन रह्यो न आसवत॥२३॥

यह भी उक्त वीर दुर्गादासजी ही की प्रशंसा में कहा हुआ है कि पाण्डव भी अर्थात् जहां अर्जुन जैसा वीर था वे भी वर्षपर्यन्त गुप्त वन में रहे परन्तु वीर दुर्गादासजी कभी छिपे हुए नहीं रहे सदा शाही फौज से बखेड़ा करते ही रहे।

जब महाराज अजीतसिंहजी को गुप्त रूप से दुर्गादासजी लेकर चले गये तब उन की माता हाडीजी ने यवनों से युद्ध करके बड़ी वीरता से अपने प्राण छोड़े थे उस ही समय का एक गीत नीचे लिखा जाता है। यह युद्ध अनुमान संवत्

१७८० वा ९० के लगभग हुआ था इस में मारवाड़ के बहुत प्रसिद्ध सरदार काम आये थे ।

गीत

दिन मांचे दंद खूँदवे दमगळ,
    पतसाही चढ जलल पड़ै ।
हाडी चढी फौजां हलकारे,
    लाडी जसवंत तणी लड़ै ॥ १ ॥

ऊगे दीह जवन चढि आवै,
    सुहड़ाँ भड़ाँ लियाँ बहु साथ ।
औरंगसाह धसे किम आधौ,
    भागो ही सुण जे भाराथ ॥ २ ॥

भाऊ जिसो अरोड़ा भाई,
    भड़ जसवंत जेहो भरतार ।
चिगथा लडण चलावै चोटां,
    सत्रु सल सुधी बजावै सार ॥ ३ ॥

पख दुहुँ नृमळ सासरो पीहर,
    जेठ अमर सत्रसाल जणो ।
राणी याणी धरम राखियो,
    तागो हिन्दुस्थान तणो ॥ ४ ॥ २४ ॥

धनजी भींवजी।

सोरठा।

गढ साखी गहलोत, कर साखी पातल कमध।
मुकन! रुघारी मोत, भली सुधारी भींवड़ा ॥२५॥
आजूणी अधरात, महलज रूंनी मुकनरी।
पातलरी परभात, भली रुवाणी भींवड़ा ॥२६॥

राजपूताने में "धनजी„ और "भींवजी„ ये दो अच्छे आतङ्कशाली वीर हो गये हैं धनजी गहलोत राजपूत थे और भींवजी "नाहर चहुवान" थे। ये दोनों वीर सम्बन्ध में मामा भानजा होते थे और इन का परस्पर अति स्नेह था। अनुमान संवत् १७६३ में जोधपुर महाराज अजीतसिंहजी ने पाली के ठाकुर "मुकुन्दसिंहजी„ को बुलाया। ठाकुर मुकुन्दसिंहजी अपने परिकर सहित जोधपुर आते थे मार्ग में उक्त वीर धनजी भींवजी की ढाणी के समीपही विश्राम किया। धनजी भींवजी का रेवड़ चर रहा था। मुकुन्दसिंहजी के साथियों ने उस में से दो खाजरू पकड़ कर काट डाले और निषेध करनेवाले गुवाल को फटकार दिया। उसने सब हाल धनजी भींवजी से कहा तो दोनों आये और एक वृक्षपर टंके हुए दोनों खाजरू उठाकर ले चले। जाते समय खाजरू पकड़ने वालों से

इतना ही कहा कि क्षत्रियों के खाजरू खाना सहज नहीं होता है। दुष्ट परिकर वालों का उन के संमुख तो कुछ साहस नहीं हुआ और पीछे से ठाकुर मुकुन्दसिंहजी को उक्त वीरों से लड़ने को उत्तेजित करना चाहा। परन्तु गम्भीर प्रकृतिशाली ठाकुर मुकुन्दसिंहजी ने उन का कथन नहीं माना और लड़ने के वदले उन से उक्त अपराध की क्षमा मांगने को स्वयं गये। सुयोग्य वीरों ने इन का परिकर सहित सत्कार किया बुद्धिमान ठाकुर साहब ने विचार किया कि ऐसे वीरों को पास रखना आवश्यक है यह सोचकर प्रसङ्ग से उन्हों ने कहा कि प्राचीन राजपूतों में मांगी चीज दे देने की बड़ी उदारता थी। यह सुन वे दोनों वीर बोले आपकी इच्छानुसार हम भी यथाशक्ति देने को प्रस्तुत हैं। चतुर ठाकुर साहब ने उनका अपने पास रहना मांग लिया और वे वीरवर इनके साथ हो लिये। निदान ठाकुर मुकुन्दसिंहजी जोधपुर पहुंचे और दर्बार का प्रधान का काम करने लगे। किसी समय महाराज अजीतसिंह जी ने "छिपिया" के ठाकुर प्रतापसिंहजी को ५०००) का विशेष पटा देनेका विचार किया तो विवेकशील ठाकुर मुकुन्द सिंहजी ने कई प्रकारके हानि लाभ समझा कर महाराज को उक्त कार्य के लिये निषेध किया। यह वृत्तान्त "प्रतापसिंहजी" ने सुना और लोभवश हो उक्त ठकुार साहब से मानसिक आँट रखने लगे। दैवात् कभी ऐसा अवसर आया कि ठाकुर मुकुन्द-

सिंहजी तो बाहर के चौकमें काम कर रहे थे और भीतर से महाराज ने इनको याद किया। ये तो वहाँ से उठ कर साधारण रीति से किसी शस्त्र के विना ही दर्बार के पास जाते थे और उक्त ठाकुर प्रतापसिंहजी भीतर से सीख कर बाहर आते थे। उन का सीढ़ियों पर से उतरना और इनका चढ़ना निदान "ताशली,, की पोळ के पास ये दोनों मिळे। अल्प बुद्धि ठाकुर प्रतापसिंहजी कटार पार करके मुकुन्दसिंहजी को मार बैठे। और स्वयं भीतर ताशली की पोळ में घुस गये। प्रातः काल ही धनजी भींवजी आपहुंचे और तासली की पोळ के कपाट तोड़ भीतर जा अपने स्वामी का वैर लिया और राजसेना से लड़कर बड़ी वीरता के साथ काम आये। ये दोनों अप्रतिम वीर होगये हैं। इनका साहस, धर्माभिमान, स्वामि-भक्ति और वीरता प्रशंसनीय है।

महाराजसवाई जयसिंहजी और महाराज अभयसिंहजी।

पति जयपुर जोधाण पति, दोनुँहि थाप उथाप।
कूरम मारिय डीकरा, कमधज मारिय बाप॥२॥

संवत् १७९० के लगभग जयपुर महाराज सवाई जयसिंहजी और जोधपुर महाराज अभयसिंहजी पुष्कर स्नान को पधारे थे वहाँ बारहठ "करणीदानजी,, भी उपस्थित थे दोनों महाराजाओं

ने बारहठजी से आगृहपूर्वक कहा कि आज तो आप हम दोनों के विषय में कुछ साथ २ ही कहैं। सच्चे चारण करणीदानजी ने यह दोहा कह दिया जिस से कुँवर शिवसिंहजी के बध का जयसिंहजी पर और महाराज अजीतसिंहजी को मारने का अपराध अभयसिंहजी व वखतसिंहजी पर प्रकट होता है। बारहठजी की सत्यभाषिता व महाराजों की क्षमा इस स्थान पर प्रशंसनीय है।

महाराणा जगतसिंहजी।

"करनारो""जगपत" कियो,कीरति काज कुरब्ब।
मन जिण धोको ले मुआ,साह दिलीस सरब्ब ॥

संवत् १७९९ में जब प्रसिद्ध कविवर "करणीदानजी" उदयपुर गये तो स्वयं महाराना जगतसिंहजी दैवारीतक उन के संमानार्थ पधारे थे। उसही समय का यह दोहा है कि जो संमान बादशाहों कोभी नहीं मिला वह संमान कवि का किया। महाराज की विद्या रसिकता और कविराजजी की विद्या प्रशंसनीय है।

महाराज सवाई जयसिंहजी।

अभो ग्राह बीकाण गज, मारू समँद अथाह।
गरुड छाड़ गोविन्द जिम, करहु सहाय जयसाह॥२१॥

संवत् १७९६ में जब जोधपुर महाराज "अभयसिंहजी,, ने बीकानेर को घेर लियो तो चतुर महाराज जोरावरसिंहजी ने बचनेका कुछ भी उपाय न पाकर यह दोहा अपने खरीते के साथ लिख कर जयपुर महाराज सवाई जयसिंहजी के पास भेजा और उन्हों ने जोधपुर पर अपनी चढाई करके बीकानेर की सहानुभूति की । धन्य है प्राचीन महाराजाओं को जो परस्पर एक दूसरे की सहायता करते थे ।

ठाकुर केसरीसिंहजी ।

"केहरिया!" करनाळ, न ज़ुड़तो जयसिंह सें ।
या मोटी अवगाळ, रहती सिर मारू धरा ॥३०॥

जब महाराज सवाई जयसिंहजी ने ऊपर लिखे समय मारवाड़ पर चढाई की और मारवाड़ से विजय पाकर युद्ध न कर पीछे ही जयपुर आरहे थे । मार्ग में "बखरी,, के ठाकुर केसरीसिंहजी कहीं जाते हुए दीख पेड़ तो इन की सेना में से किसी ने गर्व के साथ कहा कि देखो मारवाड़ से अपनी तोपैं भरी हुई ही पीछी चलती हैं । यह सुन केसरीसिंहजी को अभिमान आया और श्रीगोविन्दजी की सवारी का हाथी अपने गढ में ले गये । महाराज सवाई जयसिंहजी ने उन को बहुत समझाया परन्तु

नहीं माना । अन्त में जयपुर की सेना से भिड़ कर केसरी-सिंहजी काम आये । उन्हीं की प्रशंसा में यह उक्त दोहा है ।

ठाकुर कुशलसिंहजी ।

कुसळो पूछै कोटनै,विलखो किम वीकाण ।
मो ऊभाँ तो पालटै, भलै न ऊगै भाण ॥ ३१ ॥

वीकानेर के सरदार "भूकर,,के ठाकुर कुशलसिंहजी अच्छे वीर हो गये हैं । एक समय जोधपुर महाराज अभयसिंहजी के दवाव से वीकानेर नरेश ने वीकानेर छोड़ कर "रैनी,, रहना स्वीकार किया था । यह सुन वीर पुरोहितजी ने उक्त ठाकुर कुशलसिंहजी को योग्य समझ कर बुलाने की आज्ञा दी क्यौं कि उक्त ठाकुरसाहव पर महाराज किसी हेतु अप्रसन्न थे इस से वे अपने ग्राम में ही रहते थे । महाराज ने खास रुक्का उन के पास भेजा । जिस समय सांढिया पहुंचा तो ये एक घोड़ी के पट्टी चढा रहे थे । रुक्का पाकर तत्काल चढ चले । यद्यपि " भूकर " कोई बड़ा ठिकाना नहीं था परन्तु ठाकुर साहव के व्यवहार से वहुत लोग इन के सहायक थे इसलिये ५००० सवार वा पैदल इन के साथ हो लिये । कुशलसिंहजी ने जाकर अभयसिंहजी की सेना से विजय पाई और वीकानेर ज्यों का त्यों रह गया ।

महाराज बखतसिंहजी।

बापो मत कह बखतसी, कांपतहै केकांण।
एकर बापो फिर कह्याँ, तुरँग तजै लो प्राण ॥३२॥

अपने पिता अजीतसिंहजी को मार कर संवत् १८०७ में महाराज बखतसिंहजी जोधपुर की गद्दी बैठे। एक दिन बापो २ कह कर घोड़े को विड़दा रहे थे वहां ही कोई सच्चा चारण उपस्थित था उस ने यह दोहा कह दिया। कवि का साहस व महाराज की क्षमा प्रशंसनीय है।

मल्हारराव।

सिंहां सिर नीचा किया, गाडर करैं गलार।
अधिपतियाँ सिर ओढणी, तो सिर पाग मलार ३३

अनुमान सं० १८०८ में मल्हारराव के दबाव से राजपूताने के रईसों ने उससे एक सन्धिपत्र कर लेने का विचार किया था। परन्तु उस लेख से इनके गौरव की हानि थी। एक दिन किसी स्थान में उक्त सन्धिपत्र की सलाह हो रही थी वहां किसी चारण कवि ने यह दोहा सुना दिया जिस से सुभट जोश में आकर खड़े होगये और उसका उद्योग निष्फल हुआ।

जगरामसिंहजी ।

मरज्यो मती महेश ज्यों, राड़ विचै पग रोप ।
झगड़ामें भागो जगो, उण पाई आसोप ॥ ३४ ॥

संवत् १८११ में महाराज विजयसिंहजी के समय में मरहठों के साथ " मेड़ते " की लड़ाई हुई थी । उसमें वीरवर ठाकुर महेशदासजी ने बड़ी वीरता की और अपने बल से मारवाड़ की जीत करा कर आप वहां ही काम आये । उसही युद्ध में " जगरामसिंहजी " परास्त हुए आ भगे तो भी उन को महाराज ने " आसोप „ का पटा देने का विचार किया। जिस दिन पटा दिया जाता उस ही दिन किसी चारण ने यह दोहा महाराज को सुन दिया तो महाराज ने उन को " आसोप „ नहीं दी । ऐसे २ समयों पर सचेत कराने के लिये ही तो चारणों का आदर होता है ।

महाराज मानसिंहजी और जालोर का किला ।

आभ फटै धर ऊससै, कटै बगतरां कोर ।
सिर तूटै धड़ तड़ फड़ै, जद छूटै जालोर ॥३५॥

जब महाराज भीमसिंहजी के बखेड़े से महाराज मान-सिंहजी जालोर के किले में अत्यन्त दुःखी होगये तो अनुमान

से संवत् १८६०में यह विचार कर लिया कि अब किला छोड़ चलैं। जब चलने की तैयारी होने लगी तो "वीजोजी" नामक चारण कवि ने यह दोहा कह कर महाराज मानसिंहजी का साहस बढाया फिर वे वहां ही रहे और ईश्वर ने ऐसा अनुग्रह किया कि फिर वह ही भीमसिंहजी की फोज उनको जोधपुर की गद्दी बैठाने को लाई।

सोढा कीरतसिंहजी।

तन झड़ खागाँ तीख, पाड़ि घणा खळ पोढियो।
किरतो नग कोडीक, जड़ियो गढ़ जोधाणरै,॥३६॥

जब सम्वत् १८६२ में ठाकुर सवाईसिंहजी के उपद्रव उठाने पर विपक्षियों की सेना ने जोधपुर के दुर्ग को घेर लिया तो महाराज मानसिंहजी ने कहा अब यह हल्ला रुकना असम्भव है। यह सुन "सोढा" सरदार वीर कीर्तिसिंहजी ने प्रतिज्ञा की कि मैं इस हल्ले को हटाऊंगा। यह कह हल्ला हटाया और स्वयं भी वीरता से वहां ही काम आये। उन्ही वीर कीर्तिसिंहजी के लिये यह दोहा महाराज मानसिंहजी ने स्वयं बनाकर कहा है।

महाराज पद्मसिंहजी।

एक घड़ी आळोच,
मोहणरे करतो मरण।

(थारो) सोह जमवारो सोच,
करताँहि जातो करनव्रत ॥ ३७॥

बीकानेर महाराज "कर्णसिंहजी,, के पुत्र पद्मसिंहजी बड़े विख्यात वीर हुए हैं। जब पादशाह आलमगीर दक्षिण में ठहराहुआ था उस समय उक्त वीर पद्मसिंहजी और इनके छोटे भ्राता मोहनसिंहजी भी उस के साथ में उपस्थित थे। एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि मोहनसिंहजी अकेले ही दरबार को जाते थे डेवढी पर कोतवाल के और इन के हिरनों के लड़ाने पर कुछ विवाद होगया और दुष्ट कोतवाल ने उनका सिर काट दिया और पीछे अपने प्राण बचाने के लिये दर्बार में जा बैठा। इधर पद्मसिंहजी डेवढी पर आए तो उन को अपने भ्राता का वृत्तान्त विदित हुआ। उस ही समय वे ज्यों के त्यों दरबार में गये और अपराधी कोतवाल का सिर उडा दिया। उन्होंने दरबार से कुछ भी संकोच नहीं किया तत्काल अपने भाई का बदला ले लिया। उसही भावका यह दोहा है। पद्मसिंहजी का साहस, भ्रातृस्नेह और वीरता प्रशंसनीय है।

ठाकुर अर्जुन सिंहजी और कविराज बांकीदासजी।

माळी ग्रीषम माहँ, पोष सुजळ द्रुम पाळियो।
जिणरो जस किमजाय, अति घण बूठांही अजा ॥३८॥

जोधपुर महाराज मानसिंहजी के पास कविराज बांकीदासजी एक उत्तम और प्रख्यात कवि हुए हैं। एक दिन महाराज के साथ हाथी पर चढे हुए कविराजजी चल रहे थे उस ही समय रायपुर ठाकुर अर्जुनसिंहजी (जिनके पास कविराजजी पूर्व काल में अपनी सामान्य दशा में जाया करते थे) ने पूछा कि आपको उन गावों के वृत्तान्त भी स्मरण हैं कि नहीं। तब बांकी दासजी ने इस दोहे के द्वारा अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

ठाकुर बहादुरसिंहजी।

रँगरे बादरियाह, पाधरिया की धा पिसण ।
अधिं पति आदरियाह, दाळ धरारी देण नै ॥३९॥

अनुमान संवत् १८७० में जब सिंध देश के यवनों ने बहुत उपद्रव मचाया तो मारवाड़ के सुयोग्य महाराज मानसिंह जी ने उन को दबाने के लिये ठाकुर बहादुर सिंहजी को नियत किया। उन्हों ने बडी वीरता के साथ उन यवनों को मार पीट कर निकाळ दिया। सुना जाता है कि इसी लिये उक्त ठाकुर साहब को सब राज्यों से दाळ मिलती थी। ये ठाकुर साहब शूर वीर होने के अतिरिक्त राजकीय कार्यों में भी अति निपुण थे। इन की निष्पक्षपातता और सुप्रबन्ध (इन्तजाम) की कई बातें प्रसिद्ध हैं। उन में से एक का उल्लेख

किया जाता है। ठाकुर बहादुरसिंहजी ने किसी अरण्य में डेरा डाल रक्खा था ग्रीष्म ऋतु के कारण प्रचण्ड मार्तण्ड की किरणों से आग बरस रही थी। ऐसे समय में कोई किसान ग्राम से एक "लोटडी," में जल भर कर अपने खेत को जा रहा था। दैववश कोई कुंवर साहब मदिरा पिए हुए उस को मार्ग में मिल गये और कहा कि तू इस जल से हमारे घोड़े का मुंह छांट दे। यह सुन वह घबराया और कुंवर साहब से प्रार्थना की कि इस असह्य आतप में मैं बड़े कष्ट से यह जल लाया हूं, आप ग्राम पधार कर अश्वका मुख छंटालेने की कृपा करैं। मदान्ध कुंवर साहब ने उस का वह जलपात्र छीन लिया और उसही पात्र से उस के सिर में प्रहार किया जिस से बेचारेका शिर फूट गया। उस ने जाकर ठाकुर साहब से पुकार की तो उसही समय उन कंवरजी को बुलाकर उस से कहा कि तू अब चाहे जितनी लोटाड़ियों की देकर इन से अपना बदला ले ले। उस ने वैसाही किया। धन्य है इस निष्पक्षपातता को।

महाराज मानसिंहजी।

नीम थम्भ केउ पाट नृप, छत कपाट केउ छज्ज।
धरम दिवालय कलशध्वज, धिनो मान कमधज्ज ४०

संवत् १९०० में जोधपुर महाराज मानसिंहजी संन्यास धारण कर मारवाड़ राज्य की प्राचीन राजधनी "मंडोवर,"

में विराजते थे। उस समय वे पूर्ववत् किसी सर्दार को ताज़ीम नहीं देते थे। क्योंकि जब राज्य से उन्होंने सम्बन्ध छोड़ दिया तो राज्यनियमानुसार ताज़ीम आदि कार्य करना भी उन को आवश्यक न था। एक बार "रजीडेण्ट" साहब महाराज से मिलने गये तो उन्हों ने अभ्युत्थान (ताज़ीम) नहीं दिया। उस ही समय वहां बारहठ भोपालदानजी पहुंचे और महाराज को यह ऊपर लिखा दोहा सुनाया। दोहा सुनकर सहसाही महाराज खड़े हो गये और बारहठजी से मिले। यह देख एजेण्ट साहब को कुछ विचार हुआ और उन्हों ने निज स्थान पर जा कर अपने आदमियों से वह अरुचि प्रगट की। रजीडेण्ट साहब की बात उक्त महाराज को विदित हुई। उन्हों ने पुनः एजेण्ट साहब को अपने पास बुलाया और वृत्तान्त सहित निम्नलिखित दोहा कह कर उन का सन्तोष किया।

महाराव दुर्जन सालजी।

दोहा।

साँदू "हूँपै" सेवियो, साहब दुरजनसल्ल।
विडदाँ माथो बोलियो, गीताँ दोहाँ गल्ल ॥ ४१॥

अनुमान संवत् १३६८ में जैसलमेर के महाराव दुर्जनसाल जी अलाउद्दीन खिलजी के झगड़े में बड़ी वीरता से काम आये थे। उन की महारानी सती होने चली परन्तु रणक्षेत्र में पति

शिर मिलने की बडी चिन्ता थी। परन्तु "सांदू" चारण हूंपाजी ने स्वामी को विड़दाया तो सिर हंस पड़ा। महाराज का यह तात्पर्य्य था कि चारणों के विड़दाने पर मरे हुए क्षत्रिय भी बोल उठे हैं तो मेरा तो कहना ही क्या ? महाराज मानसिंहजी क्षात्रिय धर्म पर दृढ थे। एक बार अंगरेजों से खिन्न हो कर नागपुर महाराज इनके शरण आये इन्होंने यह निम्नलिखित कवित्त कह कर उनको रख लिया और अंगरेजों से बचाया।

महाराज मानसिंहजी और नागपुर महाराज॥

कवित्त।

आये हो शरण जान मान कमधेस मोकों,
मानतहूँ धन्य २ ऐसो अवसर मैं,
लोक बीच याही काज बाजत हैं क्षत्री हम,
यातैं अब सफल करोंगो भुजबर मैं।
नागपुर नाथ जिन आप को अनाथ जान्यो,
रावरे निमित्त कर दीन्हो सिर धर मैं,
राखि हों सजत्न यों सुरेशसों बचाय कर,
राख्यो हिमगिरिपुत्र सिन्धु ज्यों उदर मैं॥४२॥

राव दलेलसिंहजी राजावत।

हसौं घुसौं यूं कहैं, सुण हो राव दलेल ! ।
सनमुख घोड़ा ठेलद्यो, होदां बावो सेल ॥ ८३॥

संवत् १८२४ में जब जवाहरमलजी भरतपुरवालों से जयपुर राज्य का विरोध हो गया तब जवाहरमलजी की प्रबलता को देखकर जयपुर के कई सरदारों ने भय मान लिया इस से जयपुर-राज्य जवाहरमलजी से सन्धि-पत्र करने के लिये उद्यत होगया उस समय धूले के वीरशिरोमणि राव दलेलसिंहजी कि जिन से यह अन होनी बात सही न गई भरे दरबार में हाजिर हुए और सब सरदारों को उपालम्भ दिया और महाराज से भी उचित प्रार्थना की। जब इन से यह कहा गया कि उन का सामना कौन करेगा तो राव दलेलसिंहजी ने कहा कि मैं इसी काम के लिए आया हूं तब महाराज ने उन को फौज मुसाहिबी का सिरोपाव प्रदान किया और हरसामल घुरसामल आदि दूसरे मुख्य आदमी भी सेना में उन की अधीनता में अफसर बना कर साथ भेजे गये और मढोली नामक ग्राम के पास भारी युद्ध हुवा जिस में राव दलेलसिंहजी अपने अच्छे हाथ दिखला कर काम आये और उन के पुत्र कुंवर लक्ष्मनसिंहजी और पौत्र भंवर राजसिंहजी भी काम आये। इस प्रकार से धूले की तीन

पीढियां काम आई । ऐसे उदाहरण राजपूताने के सरदारों के प्रभावशाली गौरव की वृद्धि के कारण हैं।

हाथीसिंहजी चांपावत।

फिट बीदां फिट कांधलां,
फिट जंगळधर लेड़ांह।
दलपत (तो) हुड़ ज्यूं पकड़ियो,
(जद) भाजगई भेडांह ॥ ४४ ॥

अनुमान से संवत् १६६९ विक्रमी में बीकानेर के महाराज दलपतसिंहजी को बादशाह शाहजहां की सेना ने रणवास-सहित पकड़ लिया। मुसलमान बादशाहों के समय में प्रायः जैसी कठोर और असह्य आज्ञाएं दी जाती थीं वैसी ही इन के लिए भी दी गई थी। इस युद्ध में बीकानेर राज्य के सरदार शत्रुओं से मिल कर परास्त हो गये इसी के उपालम्भ में किसी कवि ने ऊपर लिखा दोहा बीकानेर के सरदारों के प्रति कहा है परन्तु सच है " निर्बीज भूमि कबहू न होय " इस वचन के अनुसार महाराज दलपतसिंहजी को छुड़ाने वाला बीकानेर का सरदार तो नहीं तो भी एक राठौड़ सरदार निकल आया। वृत्तान्त यह है कि बीकानेर के उक्त महाराज जनाने सहित अजमेर में बादशाही क़ैद में थे वहां पर अकस्मात् प्रसिद्ध वीर गोपालसिंहजी के पुत्र और बळूजी

के भाई, ठाकुर हाथीसिंहजी चांपावत अपनी सुसराल जाते हुए तीन सौ सवारों सहित अजमेर आ निकले और ठहरे हुए थे। बीकानेर महाराज के साथ की एक मिनख (दासी) किसी काम के लिए बाहर आई तो उसने पूछा कि ये सवार कहां के हैं? हाथीसिंहजी के साथवालों ने उत्तर दिया कि राठौड़ हैं तो उस क्रुद्धा स्त्री ने कहा कि क्या अबतक पृथ्वी पर राठौड़ हैं? ये वचन रूपी तीर साथियों ही में नहीं रुके किन्तु हाथीसिंहजी के कानों तक पहुंचे जिस का प्रभाव यह हुआ कि उन्हों ने उस को अपने सामने बुलाकर पूछा तो उस ने बीकानेर महाराज का सब वृत्तान्त कह सुनाया। ठाकुर हाथीसिंहजी ने उसी के द्वारा महाराज को यह कहलाना चाहा कि आप कुछ समय और निकालें मैं सुसराल होकर आता हूं इस पर उस बांदी ने झुंझला कर कटाक्ष पूर्वक कहा कि सासरे के आनन्द मनाने वालों से ऐसे काम होने कठिन हैं। इस मार्मिक वचन वाण के लगते ही वीरवर हाथीसिंहजी बीकानेर महाराज को क़ैद से छुड़ाने पर उसी समय उद्यत हो गए और अपने साथ के मनुष्यों सहित बादशाही सेना पर टूट पड़े और इस में सफल मनोरथ होकर अपने मनुष्यों सहित काम आए और अचल और चिर-स्थायी कीर्ति के भागी हुए। क्या इस से बढ़कर कोई सहानु-भूति का उदाहरण हो सक्ता है?।

गुसांई जी तुलसीदासजी और नव्वाब खानखाना ।

सुरात्रिय नरात्रिय नागात्रिय, कष्ट सहैं सब कोय ।
गर्भ लिए हुलसी फिरैं, सुत तुलसी से होंय ४५

मानस रामायण के कर्ता गुसांईजी तुलसीदासजी ने उक्त दोहे का पूर्वार्द्ध लिख कर गुणग्राहक नव्वाब खानखाना के पास परीक्षा के लिये भेजा । जिस की पूर्ति में नव्वाब खानखाना ने एक मनोहारिणी उक्ति सहित ऊपर लिखा उत्तरार्द्ध लिख भेजा जिस से नव्वाब खानखाना की विद्वत्ता और सज्जनता प्रशंसनीय है ।

ग्रन्थ समाप्ति का मङ्गलाचरण ।

सवैया ।

जय जगवन्दन नन्दके नन्दन
पाण्डव स्यन्दन हाँकन हारे ।
चर्चित चन्दन कष्ट निकन्दन
ग्राह गयन्द निग्राह विदारे ।
इन्द्र फनिन्द्र कविन्द्र मुनिन्द्ररु
छन्द गुणी गुणवृन्द उचारे ।
आँनदकन्द मुकुन्द गोविन्द
करो दुखद्वन्द्व निकन्द हमारे ॥ ४३ ॥

समाप्त ।

राजस्थान-यन्त्रालय अजमेर के निज के विक्री के पुस्तकों का

सूचीपत्र ॥

नवीन भारत--आसाम के भूतपूर्व चीफ कमिश्नर, पार्लेमेण्ट के वर्तमान मेम्बर और भारत के हितैषी सर् हेनरी काटन के० सी० एस० आई० के बनाये " न्यू इण्डिया " नामक अँग्रेज़ी पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। जिस में मूल ग्रन्थकार ने तीस करोड़ भारतवासियों के राजनैतिक हकों को ऐसा सिद्ध किया है कि जैसा आज तक किसी ने नहीं किया। मानो सर हेनरी काटन हमारे वकील बन कर अपने जाति भाइयों से झगड़े हैं। भारतवर्ष की वर्तमान समय की राजनैतिक आवश्यकताओं का सुन्दर चित्र खेंचा है। अपने स्वत्वों (हकों) से प्रीति रखने वाला प्रत्येक भारतवासी इस पुस्तक को प्राण से भी प्यारा समझता है। प्रत्येक पुस्तकालय में ही नहीं किन्तु प्रत्येक भारतवासी के घर में यह पुस्तक-रत्न रहना चाहिये। भारतवासियों के हृदय में जो राजनैतिक स्वत्व प्राप्त करने की उचित इच्छाएं प्रतिदिन प्रबल वेग से उत्पन्न होती और बढ़ती जाती हैं वे इस पुस्तक के पढ़ने से दृढ़ हो जाती हैं। प्रयोजन यह है कि यह एक अद्वितीय पुस्तक है। मूल्य केवल १॥) डाक महसूल ≠) वी. पी. से १॥≢)

प्रयागमाहात्म्य—तीर्थराज प्रयागराज के माहात्म्य और प्रभाव का अनुमान इसी से हो सक्ता है कि गत महाकुम्भ के पर्व के अवसर पर बीस लाख के लगभग मनुष्य एकत्रित हुए थे। इस का माहात्म्य जानने के लिये प्रत्येक धार्मिक और श्रद्धालु हिन्दू उत्सुक हो यह एक स्वाभाविक बात है। तीर्थराज का माहात्म्य मत्स्यपुराण में महर्षि मार्कण्डेय ने धर्मराज युधिष्ठिर को कहा है परन्तु उस के संस्कृत में होने के कारण सब लोग समझ नहीं सक्ते। इस लिये हम ने संस्कृत मूल, शुद्ध और सरल हिन्दी अनुवाद सहित धर्मप्रेमियों के अर्थ प्रकाशित किया है जिस को सामान्य हिन्दी जाननेवाला मनुष्य भी सुगमता से समझ सक्ता है। मूल्य ॥=) डाक महसूल ~)

हास्य-सिन्धु—दिन भर बड़े विचार और चिन्ता युक्त कामों में लगे रहनेवाले वा निरन्तर लिखा पढ़ी के काम करने वाले लोगों के लिये फुर्सत के समय में हास्य और विनोद की बातें करना आवश्यक है जिस से मन और शरीर दोनों पुनः ताज़ा होजांय। हंसने और विनोद की बातें करने से मन तो प्रसन्न होता ही है परन्तु पाचन शक्ति बढ़ने से शरीर भी स्वस्थ होता है और डाक्टरों का कथन है कि इस से मनुष्य मोटा भी होता है। इसी लिये हम ने खूब हंसाने वाले, शिक्षा देनेवाले और वाक्चातुरी तथा क्रियाचातुरी सिखलानेवाले उत्तमोत्तम १०१ चुटकले लिख कर यह प्रथम तरङ्ग (भाग) प्रकाशित किया है यदि आनन्द में रह कर शिक्षा गृहण करना हो तो इस पुस्तक को देखिये। मूल्य केवल ।) डाक महसूल)॥

स्वानुभवसार--वेदान्त का विषय इतना गहन है कि बड़े बड़े पुस्तक पढ़ने पर भी संस्कृतज्ञ पण्डितों की समझ में कठिनता से आता है, फिर भाषा जानने वाले लोगों को इस के समझने में अत्यन्त कठिनता पड़े तो इस में क्या अचरज है ?। इस कठिनता को कम करने के लिये यह पुस्तक रचा गया है। जिस में वेदान्त के गूढ विषय भले प्रकार से खोले गये हैं। इस लिये वेदान्त शास्त्र के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक मँगा कर अवश्य देखना चाहिये मूल्य २) डाक महसूल ≈)

मनोहरप्रकाश-कवि मतिराम त्रिपाठी का बनाया नायिकाभेद का रसराज ग्रन्थ जगत प्रसिद्ध है परन्तु उस की टीका प्राप्त न होने से अनेक स्थल नहीं खुलते और अर्थों की सङ्गति नहीं बैठती इस लिये सरदारगढ़ के स्वर्गवासी ठाकुर साहब श्रीमनोहरसिंहजी ने कविवर हरदानजी सिंढायच से यह अपूर्व टीका बनवाकर बड़ा काम किया है इस में अनेक प्रश्न करके उत्तर दिये हैं जिन से गूढ़ अर्थ खुल जाता है सब ग्रन्थ में अलङ्कार भी निकाले हैं मोल १।।) महसूल =)

रसराज-मतिरामकृत मूल रसराज बड़े परिश्रम से शुद्ध करके छापा है जिस में औरों की नांई खिचड़ी नहीं है छपाई और कागज़ उत्तम है। मोल ।=) महसूल -)

विविध-संग्रह-हिन्दी भाषा के कवियों ने भी संस्कृत की नांई अच्छी २ कविताएं रची हैं परन्तु ऐसा

कोई संग्रह आज तक नहीं था जिस में एक विषय की चुनी हुई उत्तम कविताएं एक जगह मिल सकें। जयपुर राज्य की कौन्सिल के मेम्बर मलसीसर ठाकुर साहब श्रीयुत भूरसिंहजी ने इस अभाव को मिटाने के लिये हिन्दी और मरु-भाषा की अच्छी २ कविताओं का यह संग्रह करके बड़ा उपकार किया है। इस में मङ्गलाचरण, सज्जन, दृढ प्रतिज्ञा, दुर्जन, मूर्ख, नीति, भाग्य, उद्यम, वीर, धर्मवीर, दानवीर, शान्त, प्रास्ताविक और ऐतिहासिक ये चौदह प्रकरण हैं। प्रत्येक प्रकरण में चुनी हुई कविताएं एकत्र की गई हैं। इन में भी ऐतिहासिक प्रकरण जिस में चालीस के लगभग इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली कविताएं दी हैं और साथ में उन का आवश्यक ऐतिहासिक वृत्तान्त भी लिख दिया है सब से उत्तम और परम उपयोगी है। स्थान स्थान पर टिप्पणी भी कर दी गई है। प्रयोजन यह है कि यह पुस्तक प्रत्येक मनुष्य के सब समय में पास रहने योग्य है। मूल्य ||) डाक व्यय =)

रत्नसागर—(रत्नपरीक्षा) हीरा पन्ना आदि रत्नों की परीक्षा, गुण, दोष, खान, तोल, मोल आदि बातें जो लोग जानना चाहते हैं उन के लिये यह पुस्तक बड़े काम का है जिस के कंठ करने से प्रत्येक बड़ा मनुष्य वा जोहरी का धन्धा करने वाला इन बातों से जानकार हो सक्ता है। मूल्य केवल ≡) महसूल)॥

भावपञ्चासिका—प्रसिद्ध कवि वृन्दजी का बनाया यह अपूर्व पुस्तक है जिस में कूट कूट के उत्तमोत्तम भाव भरे हुये हैं देखने योग्य है। मूल्य =) महसूल)॥

वेदान्तप्रदीप—पण्डित जगन्नाथजी व्यास चूरूवालों ने उपनिषदों और वेदों के प्रमाणों और तर्कों से सिद्ध किया है कि जीव ब्रह्म में भेद है यह ग्रन्थ भी देखने योग्य है मोल ।।) महसूल —)

स्वधर्मरक्षा—यह पुस्तक बड़ा ही उपयोगी है जिस से संसार में धर्म्म की रक्षा हो। ईसाई लोग किन चालाकियों से अपना मत फैलाते हैं, उस से वैदिक मत को क्या हानि होती है और ईसाई मत से वैदिक मत की रक्षा करने के कौन २ उपाय हैं इन बातों का सविस्तर वर्णन है मोल ।) महसूल)।।

महाराणा-जश-प्रकाश-उदयपुर के महाराणाओं का जस जगद्विख्यात है जिस के विषय में नाना प्रकार की कविताऐं रची गई हैं जिन को पढकर प्रत्येक मनुष्य को अपने धर्म और कर्तव्य का ध्यान होता है। जयपुर राज्य की कौन्सिल के मेम्बर मलसीसर ठाकुर साहब श्रीयुत भूरसिंहजी ने कई महाराणाओं के सम्बन्ध की कविताऐं एकत्र करके बड़े उपकार का काम किया है। परम प्रसिद्ध महाराणा प्रतापसिंहजी की कविता सब से अधिक है जिस में आढा दुरसाजीकृत विरदछिहत्तरी भी अर्थ सहित दी गई है। आवश्यक स्थानों पर टिप्पणी भी कर दी गई है। प्रत्येक धर्म और देश के अभिमानी और इतिहास में रुचि रखने वाले पुरुष को यह संग्रह अपने पास रखना चाहिये। मूल्य और महसूल का निश्चय पीछे से होगा क्यों कि इस ग्रन्थ का अभी कार्य चलरहा है।

अर्थशास्त्रसोपान—धन कमाने और खर्च करने का शास्त्र। अर्थ शास्त्र बड़ा उपयोगी शास्त्र है जिस को अंगरेजी में "पोलीटिकल इकोनामी" कहते हैं। यूरोपियन लोग इसी शास्त्र के बल से एक एक देश का ही नहीं किन्तु महाखण्ड और भूमण्डल का हिसाब लगा कर विपुल धन कमाते और करोड़पती और अड़बपति हो जाते हैं। अंगरेज लोग भी इसी शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार भारतवर्ष में राज्य करके धन संग्रह करते हैं। धन किस को कहते हैं, कैसे उत्पन्न हो सक्ता है और कैसे खर्च करना चाहिये इत्यादि धनसम्बन्धी सब बातें इस शास्त्र के पढ़ने से आती हैं। यदि हमारे भारतवासी व्यापारी तथा अन्य लोग इस शास्त्र को पढ़ कर काम में लावें तो यूरोपियन लोगों के समान बहुत जल्द धनी हो सक्ते हैं। यह शास्त्र अंगरेजी में है, हम ने अंगरेजी के अनेक ग्रन्थों के आधार से शुद्ध हिन्दी भाषा में बनवाया है। जो छप रहा है इस में नीचे लिखे प्रकरण हैं:—

(१) सम्पत्ति का स्वरूप (२) धन की उत्पत्ति (३) श्रम के विषय में (४) मूल धन अर्थात् पूंजी के विषय में (५) सम्पत्ति का विभाग (६) भूमि-कर के विषय में (७) वेतन के विषय में (८) पूंजी के नफे के विषय में (९) राज-कर के विषय में (१०) सम्पत्ति का विनियम (११) मोल और दाम के विषय में (१२) रुपये और उस के मोल के विषय में (१३) विदेशीय वाणिज्य के विषय में (१४) उधार के व्यवहार के विषय में।

इन प्रकरणों के देखने से सहज में अनुमान हो सक्ता है कि यह पुस्तक कैसा उपयोगी है। यह जैसा एक मनुष्य के लिये उपयोगी है वैसा ही देश भर के लिये। छोटे और बड़े व्यापारियों को तो इस का नित्य पाठ करना चाहिये। यह परम उपयोगी पुस्तक, आशा है शीघ्र ही तैयार हो जायगा। अभी ठीक नहीं कह सक्ते परन्तु मूल्य १) रुपया वा इस के आस पास रहेगा, डाक महसूल पृथक् होगा। जो महाशय पहले से इस के ग्राहक होजायंगे उन को वी० पी० द्वारा भेज दिया जायगा।

छन्दरत्नावली—छन्दों का पुस्तक यह बहुत सुगम और उत्तम है जिस में साथ साथ अलङ्कारों का वर्णन भी आगया है। मोल ≡) महसूल)॥

चौपटचपेट-लम्पटों की दुर्दशा का मनोहर चित्र। मोल ≡) महसूल) ॥

एण्टीकालेराइन आक्यूलेशन-हैजे के भयंकर रोग में टीका लगाने की विधि भाषा में मोल -)॥ डा० महसूल)॥

वाणीभूषण-कवि उमेदरामजी बारहठ कृत अलङ्कारों का यह उपयोगी ग्रन्थ है जिस के कण्ठ करने से यह विषय हस्तामलक होसकता है। मोल ≡) महसूल)॥

उपदेशपञ्चाशिका—कविता में उत्तम २ उपदेश हैं। मोल)॥ डाक महसूल)॥

सद्बोध—बड़े बड़े विद्वानों के नियत किये अमूल्य सिद्वान्तों का संग्रह जिस का नित्य पाठ करना चाहिये मोल -) महसूल)॥

सच्चे देशहितैषी के गुणों पर एक व्याख्यान—बाबू यदुनाथ मजूमदार एम० ए० के अंग्रेजी पुस्तक का पण्डित हरमुकुन्द शास्त्रीजी का किया भाषानुवाद जिस में अपने देश का भला और परोपकार करने वाले लोगों के लक्षण और ढंग लिखे हैं प्रत्येक मनुष्य के देखने योग्य पुस्तक है मोल =) महसूल)॥

शीतलारोगनाशक-चेचक रोग के उपाय लिखे हैं। मोल)॥ महसूल)॥

मसीदर्पण—स्याही बनाने की विधि का पुस्तक मोल -)

वैद्यानन्दप्रकाश—वैद्यक के परीक्षित नुसखों का संग्रह मोल ॥) महसूल)॥

कपटीमित्र—कपटीमित्ररूप सर्प से बचने के लिये यह पुस्तक परमोपयोगी है मोल ≡) महसूल)॥

जमालकृत दोहे—अनेक मुसलमान कवियों ने हिन्दी भाषा में अच्छी कविताएं की हैं। उन में से मियां जमाल की रची हुई कविता भी एक है; जो अत्यन्त चटकीली और अनेक प्रकार के भावों से पूर्ण है। मियां जमाल ने अपने गूढ दोहों के अन्त में "कारण कौन जमाल !?" ऐसा पाठ

प्रायः रक्खा है। जिस में से बहुत से दोहों का अर्थ हम ने टिप्पणी में खोल दिया है। जो लोग मियां जमाल के कमाल का अनुभव करना चाहें वे इस पुस्तक को मंगावें। इस का एक एक दोहा लाख लाख रुपये का है परन्तु पुस्तक की न्योछावर =) दो आने ही हैं।

बलवन्तसिंहजी की नीसानी—बारहठ दुर्गादत्तजी ने, परम उदार और प्रसिद्ध गुणग्राहक रतलाम महाराज श्रीबलवन्तसिंहजी के नाम से दातारों की प्रशंसा में नीसानी छन्द में एक छोटासा पुस्तक बनाया है; जो बड़ा चटकीला और देखने योग्य है। हमने दुर्गादत्तजी का स्वहस्तलिखित पुस्तक प्राप्त करके, कवि के जीवनचरित्र सहित छापना प्रारम्भ किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होजायगा।

(बड़ा सूचीपत्र मंगाने से भेजा जाता है)

समर्थदान
यन्त्राधीश
राजस्थान-यन्त्रालय
अजमेर।

वीरविनोद।

अर्थात्

कर्ण-पर्व।

केवल राजपूताने में ही नहीं किन्तु काठियावाड़ और सेण्ट्रल इण्डिया आदि प्रदेशों में ऐसा कौन मनुष्य है जो कविता में रुचि रखता हो और राजपूताने के सुप्रसिद्ध कवि श्रीमान् स्वामी गणेशपुरीजी महाराज को न जानता हो ? । इन्ही स्वामीजी का बनाया यह वीरविनोद ग्रन्थ है जो महाभारत के कर्ण पर्व का आशय लेकर रचा गया है; जिस में महाभारत के सुप्रसिद्ध वीर कर्ण की वीरता का ऐसा उत्तम वर्णन किया गया है कि जिस में वीर रस को मूर्तिमान् करके दिखला दिया है। जिन लोगों ने उक्त स्वामीजी की कविता सुनी है वे बहुतसा रुपया खर्च करके इस ग्रन्थरत्न को लिखवाने के लिये तैयार थे परन्तु ग्रन्थ प्राप्त न होसकने के कारण एक दो कवित्त कहीं से हाथ लग गए तो सिद्ध मन्त्र की नांई लिये २ फिरते थे। ऐसे २ कविता-रसिक महाशयों के लिए बड़ा परिश्रम करके हम ने इस ग्रन्थ पर टीका की और अब सटीक छापा है। यह ग्रन्थ आदि से अन्त तक एक से एक बढ़ कर अनूठी कविता से भरा हुआ है। जिन को वीर रस की कविता देखना हो वे इस पुस्तक को मंगावें। मूल्य २) महसूल रजिस्टरी आदि ।-)